स्वतंत्र भारत
का
शासन विधान

★

प्रस्तावना लेखक
डा० बी० पट्टाभिसीतारमैया

★

लेखक
रघुराज गुप्त

★ ★ ★

साहित्य सदन, देहरादून

प्रथमवार :: १००० प्रति
जनवरी सन् १९४९
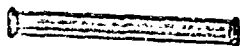
मूल्य—एक रुपया

मुद्रक तथा प्रकाशक
सुमेधकुमार गुप्ता,
भास्कर प्रेस, देहरादून ।

प्रस्तावना

इस समय हरएक व्यक्ति यह महसूस कर रहा है; उसे यह महसूस करना ही चाहिये कि डेढ़ सौ वर्ष के विदेशियों के स्वामित्व और उपभोग के बाद अठ्ठारह लाख वर्गमील, पचास शहरों, २८०० कस्बों और ६½ लाख गावों का हिन्दुस्तान, हमें वापिस किया जा रहा है। ए० आर० पी० द्वारा सरकारी प्रयोग के लिये ली हुई जायदाद वापिस होने पर आप अपना घर वर्बाद और तहस नहस दशा में पाते हैं। हमारे सारे देश की इस वक्त यही हालत है। यही हालत ३६ करोड़ आबादी की है, जो अपने ही देश में अपने को बाहर का महसूस करती है; जिसे राष्ट्रीयता-शून्य और नपुसंक बना दिया गया है। आपको दो काम करने हैं; अंग्रेजी पढ़े लिखे देशभक्ति-शून्य उच्च वर्ग के कृत्रिम नेतृत्व को नष्ट करना है और उसके स्थान पर ग्रामों से प्रादुर्भूत होने वाले एक नवीन देशभक्ति पूर्ण, सरल और साहसी नेतृत्व को लाना है। कालेजों में उनकी शिक्षा का माध्यम, अदालतों में बहस मुबाहिसे की जबान और कॉन्सिलों में विषय उपस्थित करने की भाषा, उनकी मातृ-भाषा ही होगी। प्रान्तीय-स्वतन्त्रता का यही अभिप्राय है कि हरएक प्रान्त एक जैसा और स्वावलम्बी होगा। हमारा लक्ष्य 'एक भाषा एक प्रान्त' होना चाहिये।

अंग्रेजों ने हमारे देश का शासन भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की दृष्टि से नहीं किया। यह हमें अराष्ट्रीय बनाने की प्रक्रिया थी—यही उनका ध्येय था। उन्होंने देश को कब्जे में किया था, हम अब उसे वापस ले रहे हैं। हमें प्रान्तों का पुनर्व्यवस्थापन एक जैसे तत्वों के आधार पर इस दृष्टि से करना चाहिये कि उनमें देशीय नेतृत्व का विकास हो, स्वदेशी संस्कृति का पोषण हो और भारतीय आधार पर भारतीय राष्ट्रीयता का पुनर्निर्माण हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रान्तों का पुनर्विभाजन, भाषा और संस्कृति के आधार पर होना चाहिये।

भारत में प्रान्तों के पुनर्विभाजन ने देश का ध्यान अपनी ओर खींचा है। विधान-निर्माण-परिषद् की बैठकों ने इसे महत्व प्रदान किया है।

पिछले वर्षों में दक्षिण से यह पुकार होती रही है। आन्ध्रों ने सब से पहले इस आन्दोलन को अपना आदर्श बनाया था किन्तु उसे यह कहकर बदनाम किया गया कि यह दलित वर्ग का मिशन है या पिछड़ी हुई क़ौम की तहरीक़ है। अब बङ्गालियों ने इसे अपनाया है और वे बङ्गाल का विभाजन चाहते हैं। सिलहट और कछार की जनता बड़ी देर से अपनी कमिश्नरियों के पुनर्विभाग के लिये आन्दोलन कर रही है। अम्बाला और रोहतक के पंजाबी यू० पी० के साथ जाना चाहते हैं और मेरठ तथा आगरा कमिश्नरियों से मिलकर एक अलग दिल्ली प्रान्त बनाना चाहते हैं। महाराष्ट्र में भी, अन्त में एक नई अर्द्ध-विकसित राष्ट्रीय-चेतना उद्बुद्ध हुई है।

यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है कि शिकायत रखने वालों में से नहीं किन्तु उत्तर भारतीय और कांगड़ी प्रदेश के एक विद्यार्थी ने इस आन्दोलन को अपनाया है, इस विषय को विस्तार से प्रतिपादित किया है और इस सुधार की अनिवार्य आवश्यकता पर वल दिया है। मैंने इस पुस्तक के अंश पढ़े हैं इसमें लेखक के गम्भीर अध्ययन और दृढ़ विचारों की साक्षी स्पष्ट रूप से अङ्कित है। इसकी भाषा शुद्ध हिन्दी है। मैं चाहता था कि वह हिन्दुस्तानी होती। मैं इस पुस्तक की शिफ़ारिश करता हूँ, केवल इसलिये नहीं कि यह एक सुसँस्कृत युवक की कृति है वल्कि इसे एक निष्पक्ष व्यक्ति ने लिखा है। यह बात हमारे देश की व्यापक जागृति को प्रदर्शित करती है और कैविनेट मिशन के सदस्यों ने भी इसकी ओर इस रूप में संकेत किया था कि यह जागृति भारतवर्ष को स्वाधीनता के पथ पर अवश्य ले जाने वाली है। यह निश्चित है कि हम स्वराज्य लेंगे किन्तु हमें उसे सच्चे अर्थों में स्वराज्य बनाना है। इस कार्य को तरुण और उदीयमान लेखक ने सफलतापूर्वक सम्पादित किया है।

वी० पट्टाभिसीतारमैया
८-१-४७

अंग्रेजी से

दो शब्द

आज हम स्वतन्त्रता के द्वार पर हैं। विधान परिषद् इसकी पूर्व सूचना है। इसलिये अनायास ही ४० करोड़ भारतवासियों का ध्यान देश की विभिन्न समस्याओं की ओर केन्द्रित है। उनके मन में स्वभावतः यह प्रश्न उठते हैं:—विधान-परिषद् क्या है? उसका ध्येय और मर्यादा क्या है? स्वतन्त्र भारत के शासन-विधान की रूपरेखा क्या होगी? उसका आर्थिक संगठन किन सिद्धान्तों पर होना चाहिये? वर्तमान प्रान्तों का पुनर्विभाजन किस आधार पर हो? विभिन्न भाषाओं और जातियों की समस्या किस प्रकार सुलझाई जाय? हिन्दू और मुसल्मानों का वैमनस्य किस प्रकार दूर हो सकता है? रियासती प्रजा निरंकुश राजाओं की दासता से कैसे मुक्त हो सकेगी? यदि अंग्रेजों ने भारत की मांग—स्वतन्त्रता को स्वीकार न किया तब हमारा क्या कर्तव्य होगा? प्रस्तुत पुस्तक में संक्षेप में इन सब प्रश्नों पर प्रकाश डाला गया है।

सर्वप्रथम मैं भारतवर्ष के प्रमुख राजनीतिज्ञ और विधान-विशेषज्ञ डा० पट्टाभिसीतारमैया को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने देश के अनेकानेक कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी पुस्तक के कुछ अंश सुने और उसकी प्रस्तावना लिख कर मुझे प्रोत्साहित किया। डाक्टर साहब पाकिस्तान व अन्य कुछ बातों पर मुझ

से सहमत न थे, फिर भी बड़ी प्रसन्नता से उन्होंने मुझे अपने स्वतन्त्र विचार व्यक्त करने को प्रेरित किया।

अपने विद्वान् मित्र प्रो० हरिदत्त जी वेदालङ्कार का विशेषरूप से आभारी हूँ, जिनके सहयोग से ही मैं यह पुस्तक लिख सका हूँ। बहन सुशीला व उमा का स्नेहवश पुस्तक की शुद्ध प्रतिलिपि करने के लिये धन्यवाद देता हूँ।

प्रान्तों और भाषा का हिस्सा लिखने में मुझे प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार कृत 'भारत भूमि और उसके निवासी' तथा पाकिस्तान का हिस्सा लिखने में विद्वान् डाक्टर अम्बेडकर कृत 'पाकिस्तान और पार्टीशन आफ इन्डिया' से बहुत मदद मिली है। जिसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

देहरादून
१६-१-४७

—रघुराज गुप्त

स्वतन्त्र भारत

का

शासन विधान

पुस्तक के प्रतिपाद्य विषयः—

विधान निर्माण परिषद्

नौ दिसम्बर १९४६ ई० भारतीय इतिहास में सदैव स्मरणीय तिथि रहेगी। इसी दिन भारतवर्ष के प्रत्येक कोने से इस प्राचीन और महान् राष्ट्र के चुने हुए जन-प्रतिनिधि, राष्ट्र-सेवक, क्रान्ति-कारी, प्रमुख राजनीतिज्ञ और लब्ध-प्रतिष्ठ वैधानिक पण्डित, देश की राजधानी दिल्ली में स्वतन्त्र-भारत का शासन-विधान बनाने के लिये प्रथम बार एकत्र हुए थे। आज भी यह विधान-परिषद् तत्परता से भारतवर्ष के प्रमुख राजनीतिज्ञ विधान-विशेषज्ञ और निष्पक्ष नेता देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पादित कर रही है।

वर्तमान समय में विधान-परिषदों का आयोजन सर्वप्रथम संयुक्त-राज्य अमेरिका में हुआ। अतएव इसकी जन्म-भूमि अमेरिका ही समझनी चाहिये। राजनीति के क्षेत्र में यह अमेरिका की विशेष देन है। लोकतन्त्र की विचार-धारा ने इसे जन्म दिया है। अमेरिकन-क्रान्ति इसका मूल है। क्रान्ति के प्रारम्भिक काल में इसका स्थान प्रान्तीय सभाओं ने लिया, जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर विधान निर्माण के लिये बुलाया जाता था। १७७६ ई० से १८८७ ई० तक वर्जीनिया, दक्षिणी कैरोलो-निया आदि विभिन्न स्वतन्त्र राज्यों के विधान इसी प्रकार बने। आधुनिक ढङ्ग पर प्रथम बार १८८७ ई० में अमेरिकन सङ्घ का

विधान बनाने के लिये एक विशेष विधान-परिषद् बुलायी गई। इसके बाद योरप में इस पद्धति का प्रचार हुआ। फ्रान्स, बेलजियम, स्विटजरलैण्ड, डेनमार्क के विधान, विधान-परिषदों द्वारा ही बनाये गये। १९१९ के महायुद्ध के पश्चात् जर्मनी, आस्ट्रिया, जैकोस्लोवाकिया और रूस आदि अनेक देशों के विधानों का निर्माण भी इसी प्रणाली से हुआ।

इस समय किसी देश का शासन-विधान बनाने के लिये विधान-परिषद ही आदर्श संस्था मानी जाती है। राष्ट्रीय महासभा (काँग्रेस) गत ६० वर्षों से भारत की स्वतन्त्रता के लिये अनवरत आन्दोलन कर रही है। १९२० से विश्ववन्द्य महात्मा गान्धी के नेतृत्व में हमारे देश ने स्वतन्त्रता के मार्ग पर तेजी से बढ़ना आरम्भ किया। सर्व प्रथम महात्मा जी ने १९२२ में यह आवाज उठाई कि इस देश का शासन विधान भारतीय जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधि ही बनायें, हमारे देश का शासन विधान ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा नहीं बनाया जाना चाहिये। पं० जवाहरलाल नेहरू ने विधान परिषद् के विचार को अपने प्रभावशाली भाषणों व लेखों द्वारा बड़ा लोकप्रिय बनाया। राष्ट्रीय महासभा ने १९३६ के फैजपुर अधिवेशन में विधान परिषद् के सिद्धान्त को स्वीकृत किया। तब से राष्ट्रीय महा सभा के कर्णधारों का मुख्य प्रयत्न यही रहा है कि इस देश का शासन विधान जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि ही बनायें। राष्ट्रीय महासभा के प्रयत्नों का ही यह परिणाम है कि ब्रिटिश सरकार को भारत को

स्वतन्त्रता देने के लिये लाचार होना पड़ा और ब्रिटिश मंत्रि-मंडल-मिशन ने भावी शासन-विधान बनाने के लिये विधान परिषद् की व्यवस्था की। वर्तमान विधान-परिषद् उसी व्यवस्था के अनुसार चुनी गयी है।

भारत के भावी शासन विधान के निर्माण का कार्य सुगम नहीं है। हमारे देश के दुर्भाग्य से और पराधीनता के अभिशाप से हमारे राजनैतिक जीवन में कुछ बुराइयां बद्धमूल हो गयी हैं। अपना शासन विधान बनाते हुए हम सहसा उनको अपनी दृष्टि से ओझल नहीं कर सकते। ब्रिटिश शासकों ने भारतवर्ष में अपने शासन को स्थिर रखने के लिये हिन्दू मुसल्मानों के कुछ सामाजिक भेदों का लाभ उठाकर, राजनैतिक क्षेत्र में पृथक निर्वाचन द्वारा साम्प्रदायिकता के जिस विषवृक्ष का बीजारोपण किया था, आज वह पाकिस्तान के विशालरूप में स्वतन्त्रता के मार्ग में बाधक होकर खड़ा है। ब्रिटिश सत्ता का दूसरा आधार प्रतिगामी राजा थे। इन राजाओं द्वारा न केवल ब्रिटिश भारत की स्वतन्त्रता के मार्ग में बाधा डाली गयी अपितु भारतवर्ष के एक बड़े भाग को दोहरी गुलामी की जंजीरों से बुरी तरह जकड़ दिया गया। विधान-परिषद् को पाकिस्तान और राजाओं की जटिल समस्याओं को हल करना है। इसके अतिरिक्त नवीन भारत का निर्माण करते हुए प्रान्तों का पुनर्विभाजन भी आवश्यक है क्योंकि इस समय के प्रान्त, भाषा, संस्कृति, इतिहास

और साम्प्रदायिक कटुता बढ़ाने के लिये किये गये प्रयत्नों का ही परिणाम है। नवीन शासन विधान में भाषा के आधार पर प्रान्तों का पुनर्विभाजन भी किया जाना चाहिये। विधान परिषद् के सामने शासन-विधान के स्वरूप के सम्बन्ध में भी कुछ पेचीदा प्रश्न उपस्थित है।

विधान-परिषद् के उद्देश्य और मर्यादा

किन्तु उपर्युक्त जटिल समस्याओं की विवेचना करने से पहिले हमें विधान परिषद् के उद्देश्य व मर्यादाओं को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। जब तक हम अपने शासन विधान का लक्ष्य निर्धारित नहीं कर लेते तब तक हम विधान-निर्माण के मार्ग पर कैसे अग्रसर हो सकते हैं? उस अवस्था में हमारा सारा प्रयत्न निरुद्देश्य होने से विफल होगा। इसी बात को दृष्टि में रखते हुए केन्द्रीय सरकार के प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने विधान परिषद् के सन्मुख उद्देश्य सम्बन्धी एक महत्व-पूर्ण प्रस्ताव रखा है। इस प्रस्ताव के मुख्य अंश निम्न हैं:— (१) भारतवर्ष एक स्वतन्त्र सत्ता प्राप्त जनतन्त्र घोषित कर दिया जाय (२) स्वतन्त्र भारत का एक सङ्घ होगा जिसमें वर्तमान ब्रिटिश भारत, देशी रियासतें तथा अन्य हिस्से जो उसमें आना चाहें सम्मिलित होंगे। (३) सङ्घ में सम्मिलित होने वाली स्वतन्त्र इकाइयों की सीमा विधान-परिषद् द्वारा निश्चित होगी (४) ये इकाइयां सङ्घीय विषयों को छोड़ बाकी सब शासनाधि-

कारों का उपयोग कर सकेंगी (५) स्वतन्त्र भारत में राज्य को समस्त शक्ति व अधिकार जनता से प्राप्त होंगे।

उद्देश्यों की घोषणा में भारत के भावी शासन विधान के मूलभूत सिद्धान्तों का संक्षिप्त उल्लेख है। इनमें सबसे महत्त्व-पूर्ण सिद्धान्त यह है कि भारत का शासन विधान लोकतन्त्र के आधार पर बनाया जायगा। अब्राहिम लिङ्कन के प्रसिद्ध शब्दों में लोकतन्त्र का आशय है "जनता का शासन, जनता द्वारा शासन और जनता के लिये शासन"। लोकतन्त्र में जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि जनता के कल्याण के लिये ही शासन करते हैं। देश का प्रत्येक नागरिक तुल्य राजनैतिक अधिकार रखता है। और अपने मतदान के अधिकार से अपने देश के शासन सञ्चालन में अप्रत्यक्ष रूप से हिस्सा लेता है। लोकतन्त्र मानवीय समानता के सिद्धान्त को लेकर चला है। इसमें अमीर और गरीब, पूँजीपति व मजदूर आदि आर्थिक वर्गों को ध्यान में न रखते हुए सब को एक समान राजनैतिक अधिकार दिये जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह आदर्श स्थिति है। सब लोगों के राजनैतिक अधिकार बराबर होने ही चाहियें। हमारे शासन विधान में भी इसी उदात्त लक्ष्य को दृष्टि में रखते हुए लोकतन्त्र भावी शासन विधान का एक मूल सिद्धान्त माना गया है, किन्तु अन्य देशों का लोकतन्त्र का इतिहास यह बतलाता है कि राज-नैतिक अधिकारों की समानता ही पर्याप्त नहीं है, इसके साथ आर्थिक समानता की जब तक व्यवस्था नहीं की जाती तब तक

सच्चा लोकतन्त्र स्थापित नहीं हो सकता। पूँजीवादी देशों के उदाहरण ने यह दिखा दिया है कि वहां पर राजनैतिक अधिकारों की समानता होते हुए भी सारी शक्ति कुछ मुट्ठीभर पूँजीपतियों के हाथ में चली जाती है; क्योंकि वह पूँजीपति धन की शक्ति से अधिकांश जनता के वोट खरीद लेते हैं, उस समय जनतन्त्र निरा दिखावा रह जाता है। वास्तविक सत्ता जनता के हाथ में न रह कर धनिकों के हाथ में आ जाती है। उस समय पूँजीपतियों को आर्थिक-शोषण करने का पूरा अवसर मिलता है। जो शासन विधान जनता के कल्याण के लिये बनाया गया था वह पूँजीपतियों की स्वार्थ-सिद्धि का साधन बन जाता है।

अतएव हमारे शासन विधान के उद्देश्यों में स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख होना चाहिये कि स्वतन्त्र भारत में सब नागरिकों के आर्थिक अधिकार भी समान होंगे। ये अधिकार एक समाजवादी राज्य में ही सम्भव हो सकते हैं इसी लिये हमें यह घोषणा करने की भी आवश्यकता है कि नवभारत का शासन समाजवादी सिद्धान्तों के अनुसार होगा। उस राज्य में उत्पादन के सभी प्रमुख साधनों, अर्थात् बड़े बड़े उद्योग व्यवसाय व कारखानों पर समाज का स्वामित्व होगा।

भारतीय विधान परिषद् के अधिकार

सामान्य रूप से विधान परिषदें जनता द्वारा निर्वाचित होने के कारण पूर्ण एवं सर्व सत्ता सम्पन्न समझी जाती हैं। यह बात उन देशों में पूरे तौर से लागू होती है जो स्वतन्त्र हैं अथवा जहाँ विधान-परिषदें देश की

सामूहिक-क्रान्ति का परिणाम होती हैं। भारतवर्ष में विधान परिषद् के निर्माण का बहुत बड़ा श्रेय राष्ट्रीय-महासभा के स्वातन्त्र्य-सङ्घर्ष को है। किन्तु पूर्णरूपेण वह देश के भीतर हुई किसी क्रान्ति का परिणाम नहीं अपितु ब्रिटिश-मिशन द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार चुनी गई विधान-परिषद् है। मन्त्रि-मण्डल ने साम्प्रदायिक विषयों के सम्बन्ध में विधान-परिषद् पर कुछ प्रतिबन्ध लगाये हैं। अपनी योजना में कुछ ऐसे मौलिक सिद्धान्तों का भी निर्देश किया है जिनका पालन करने को विधान-परिषद् बाध्य है। हमारे देश की विशेष परिस्थितियों के कारण विधान परिषद् पूर्णरूप से सर्व-सत्ता-सम्पन्न संस्था नहीं बन सकी किन्तु हमें इसमें कोई सन्देह नहीं कि विधान-परिषद् स्वयमेव यह स्वतन्त्रता प्राप्त कर सर्व-सत्ता-सम्पन्न संस्था बन जायेगी। विधान परिषद् के अध्यक्ष डा० राजेन्द्रप्रसाद के निम्न शब्द इस विषय में ध्यान देने योग्य हैं—"मुझे यह विदित है कि इस विधान-परिषद् पर जन्म से ही कुछ परिमितता लगी हुई है। हो सकता है कि अपने कार्य सञ्चालन में तथा कतिपय निर्णयों पर पहुचने में हम इस परिमितता को न भूल सकें अथवा उनकी उपेक्षा न कर सकें, लेकिन मैं जानता हूँ कि उस परिमितता के बावजूद विधान-परिषद् एक स्वशासक तथा आत्मनिर्णायक संस्था है और उसकी कार्यवाही में कोई बाह्य-सत्ता हस्तक्षेप नहीं कर सकती। वास्तव में इस विधान-परिषद् की यह ताकत है कि वह उस परिमितता को नष्ट करे

जोकि जन्म से इस पर लगी हुई है। मुझे आशा है कि आप महानुभाव जो कि एक स्वतन्त्र भारत का विधान बनाने के लिये यहाँ एकत्रित हुए हैं, इन बन्धनों को दूर करने में समर्थ हो सकेंगे और दुनियां के सामने एक ऐसा आदर्श विधान पेश कर सकेंगे जो कि इस महादेश में रहने वाली सब जातियों, धर्मों तथा वर्गों के लोगों को सन्तुष्ट कर सकेगा और प्रत्येक व्यक्ति को कार्य, विचार, विश्वास तथा धर्म की गारण्टी दे सकेगा। यह विधान प्रत्येक व्यक्ति को सर्वोच्च स्थिति पर पहुंचने का अवसर देने की गारण्टी देगा तथा प्रत्येक व्यक्ति को यह वचन देगा कि उसकी आजादी हर हालत में सुरक्षित रहेगी।"

स्वतन्त्र भारत के आदर्श शासन-विधान की रूपरेखा

आज हमारे राष्ट्रीय नेता स्वतन्त्र भारत का शासन-विधान बनाने में संलग्न हैं। इस विषय में सोचना तथा कुछ सुझाव प्रस्तुत करना अप्रासङ्गिक न होगा।

छोटे छोटे राज्यों का अब युग बीत चुका है, उनकी निरर्थकता योरुपीय उदाहरणों से भली भाँति प्रकट हो चुकी है, जो कि छोटे छोटे राज्यों का सपना लेने वालों की आँखें खोलने के लिये काफ़ी है। स्वतन्त्र और शक्तिशाली भारत के निर्माण के लिये भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों का एक सुदृढ़ सङ्घ बनना

आवश्यक है। इसकी सब इकाइयाँ स्वेच्छा से सङ्घ की सदस्य बनेंगी। भारतीय प्रान्तों के अलावा अन्य राष्ट्र भी इसमें सम्मिलित हो सकेंगे। जो प्रान्त उसमें सम्मिलित न होना चाहें उन्हें अलग रहने का अधिकार मिलना चाहिये; इसके निश्चय का अधिकार वहाँ की जनता को होगा। यदि रियासतों की जनता रियासतों का अन्त करने का निश्चय करती है तो वे रियासतें भी स्वेच्छा से सङ्घ में सम्मिलित हो सकेंगी अथवा यदि वहाँ की जनता अलग रहना चाहे तो उसे अलग रहने की पूरी आज़ादी होगी। एक प्रान्त में भी यदि एक बड़े प्रदेश का बहुमत अलग होना चाहे तो उसे भी आत्म-निर्णय का अधिकार होगा बशर्ते वह सङ्घ की सीमाओं के बीच न हो। उदाहरणतः यदि बङ्गाल प्रान्त के पूर्वी अथवा पंजाब प्रान्त के पश्चिमी मुस्लिम बहुमत प्रदेश किसी कारण से सङ्घ में नहीं रहना चाहते तो उन्हें सङ्घ में रहने के लिये विवश नहीं किया जाना चाहिये यदि वे चाहें तो उन्हें अलग रहने का हक है।

भारतीय सङ्घ

वर्तमान महायुद्ध ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इस युग में किसी भी सफल सरकार के लिये शक्तिशाली केन्द्र की आवश्यकता है। फिर भी भारतीय सङ्घ का यह आदर्श होना चाहिये कि उसका केन्द्रीय शासन प्रान्तों के समुचित सांस्कृतिक विकास और उन्नति में किसी प्रकार बाधक सिद्ध न हो और न उसकी विशेषताओं का ह्रास करने वाला हो। इस सिद्धान्त को दृष्टि में

रखते हुए निम्न विषय सङ्घ के ही आधीन होने चाहियें— (१) विदेशी मामले (२) मुद्रा और साख (३) रक्षा (४ आन्तरिक और विदेशी व्यापार (५) यातायात (६) डाक, तार, टेलीफोन, रेडियो (७) लेन-देन और बीमा (८) व्यवसाय (६) श्रम-सम्बन्धी-कानून (१०) आर्थिक आयोजन (११ तोल और माप (१२) उपर्युक्त विषयों के लिये धन-संग्रह का अधिकार। बाकी विषय प्रान्तों के अधिकार क्षेत्र में होने चाहियें। प्रान्त का कानून यदि सङ्घ के विपरीत हो तो उस दशा में सङ्घ का कानून ही मान्य होगा। सङ्घ कोई ऐसा कानून न बना सकेगा जिसमें किसी प्रान्त को दूसरे प्रान्त के मुकाबले में रियायत दी जाय। सङ्घ और प्रान्तों के झगड़ों का निपटारा सर्वोच्च न्यायालय करेगा जिसका निर्णय सब को मान्य होगा।

सङ्घ-शासन

राष्ट्रपति और मन्त्रि-परिषद् मिलकर केन्द्रीय शासन का सञ्चालन करेंगे।

राष्ट्रपति का चुनाव प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं द्वारा अप्रत्यक्ष तथा अप्रमान्य मत प्रणाली से ७॥ वर्ष के लिये होगा। सङ्घ का कोई नागरिक जिसकी उम्र ३५ साल से ऊपर हो तथा जो कम से कम ५ साल तक सङ्घ-सभा का सदस्य रहा हो, राष्ट्रपति के चुनाव के लिये खड़ा हो सकेगा।

(१) राष्ट्रपति के शासन-सम्बन्धी अधिकार

शासन के प्रमुख की हैसियत से उसको मन्त्रि-परिषद् के

कार्य-सम्पादन के नियमों को बनाने का अधिकार होगा। साधारणतः वह मन्त्रि-परिषद् की राय के अनुसार कार्य करेगा लेकिन असाधारण परिस्थितियों में अथवा अशान्ति काल मे उसे स्वेच्छा से कार्य करने का अधिकार होगा जब कि वह यह समझे कि उसका वह कार्य भारत के हित में आवश्यक है। दो चुनावों के अन्तःकाल में शासन की समूची जिम्मेदारी उस पर होगी। (२) कानून-सम्बन्धी अधिकार—उसे केन्द्रीय धारा-सभा बुलाने, भङ्ग करने अथवा स्थगित करने का अधिकार होगा। परिस्थिति-विशेष में वह धारा-सभा की अवधि को भी बढ़ा सकेगा। अशान्ति-काल में वह बिना धारा-सभा की स्वीकृति के भी कानून बना सकेगा, परन्तु उस कानून की अवधि एक वर्ष से अधिक न होगी। प्रत्येक दशा में उस कानून के लिये कम से कम प्रधान-मन्त्री की स्वीकृति आवश्यक होगी। (३) न्याय-सम्बन्धी मामलों में उसका कुछ दखल न होगा।

विशेष अवस्था में अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने पर सङ्घ-सभा के $\frac{2}{3}$ सदस्यों के अविश्वास-प्रस्ताव पर जिसकी पुष्टि जन-बहुमत द्वारा हो, प्रधान को अवधि से पूर्व भी हटाया जा सकेगा।

मन्त्रि-परिषद्

इसके सदस्यों की संख्या ११ होगी। सङ्घ-सभा में जिस दल का बहुमत होगा, राष्ट्रपति उसके नेता को मन्त्रि-परिषद् बनाने को आमन्त्रित करेगा। प्रधान-मन्त्री अपने सहकारी

मन्त्रियों की सूची राष्ट्रपति के सम्मुख उपस्थित करेगा और साथ में उनके सिपुर्द अलग अलग विभाग करेगा। सङ्घ के प्रत्येक विषय के लिये अलग अलग मन्त्री होंगे। मन्त्रि-परिषद् की बैठकें गुप्त रूप से होंगी, जिसमें राष्ट्रपति अथवा उसकी अनुपस्थिति में प्रधान-मन्त्री अध्यक्ष-पद ग्रहण करेगा। सब मन्त्री और राष्ट्रपति मिलकर शासन-नीति निर्धारित करेंगे। राष्ट्रपति और मन्त्रि-परिषद की संयुक्त जिम्मेदारी होगी। सरकारी आज्ञायें राष्ट्रपति और प्रधान-मन्त्री दोनों के हस्ताक्षरों से जारी होंगी। मन्त्रि-परिषद् सङ्घ सभा के प्रति उत्तरदायी होगी। उसके प्रति अविश्वास,प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने पर उसे त्याग-पत्र दे देना होगा।

संघ-सभा

यह राष्ट्रपति प्रधान-मन्त्री तथा संघ-सभा से मिल कर बनेगी। संघ-सभा के चार सौ सदस्य होंगे। उसके सदस्यों के लिये ३० वर्ष से बड़ी उम्र होना तथा कमसे कम पांच वर्ष किसी प्रान्त-सभा का सदस्य होना आवश्यक होगा। ये सदस्य प्रान्तीय धारा सभाओं द्वारा आबादी के अनुसार अप्रत्यक्ष तथा सम्मिलित चुनाव प्रणाली द्वारा ५ वर्ष के लिये चुने जायेंगे। आज की भांति किसी धर्म, जाति या वर्ग विशेष के लिये कोई स्थान सुरक्षित न होंगे, चुनाव का मापदण्ड केवल योग्यता होगी। यदि एक समय भारतीय संघ की आबादी ४० करोड़ मानली जाय और एक प्रान्त की आबादी चार करोड़, तो उसे २० प्रतिनिधि संघ-सभा में भेजने का अधिकार होगा।

(१) कानून सम्बन्धी अधिकार

संघ-सभा को समस्त केन्द्रीय विषयों पर कानून बनाने का अधिकार होगा, वह अनुमानित आय व्यय (Budget) के प्रत्येक हिस्से पर अपना मत दे सकेंगे। कोई भी प्रस्ताव संघ-सभा के $\frac{2}{3}$ सदस्यों से स्वीकृत होने के बाद राष्ट्रपति और प्रधान-मंत्री के हस्ताक्षर हो जाने पर कानून बन सकेगा।

(२) आलोचना-सम्बन्धी अधिकार

सब सदस्यों को प्रश्नों, स्थगित प्रस्तावों तथा सुझावों द्वारा मन्त्रि-परिषद् का ध्यान जनता की आवश्यकताओं की ओर आकर्षित करने का अधिकार होगा।

(३) प्रतिबन्ध

राष्ट्रपति किसी प्रस्ताव की स्वीकृति अधिक से अधिक एक साल तक रोक सकता है यदि वह समझे कि यह सङ्घ के हित के लिये अत्यावश्यक है। अशान्ति-काल में राष्ट्रपति बिना सङ्घ-सभा की स्वीकृति से भी एक साल के लिये कानून बना सकता है।

सङ्घ-सभा का केवल एक भवन होगा। अक्सर लोक-तंत्रीय राज्यों में कानून निर्माण के लिये दो भवन होते हैं। वस्तुतः निचले भवन को ही समस्त शक्ति व सत्ता प्राप्त होती है। ऊपर का भवन व्यवहार में निरर्थक और प्रतिगामी ही साबित

हुआ है, इसलिये हमारी सम्मति में द्विभवन प्रणाली बोझिल, अनुपयोगी और अनावश्यक है।

संघ न्यायालय

प्रत्येक सङ्घ में एक ऐसा निष्पक्ष न्यायालय आवश्यक होता है जो प्रान्तीय व केन्द्रीय अधिकार क्षेत्र का फैसला करे। हमारे सङ्घ का भी एक न्यायालय होना चाहिये। उसमें एक मुख्य न्यायाधीश और चार सहायक न्यायाधीश होंगे। जिनका चुनाव प्रान्तीय न्यायालय के सर्वोच्च प्रतिष्ठित न्यायाधीशों में से होगा। प्रान्तीय जिलों के न्यायाधीशों को उन्हें चुनने का अधिकार होगा। सङ्घ-न्यायालय के न्यायाधीशों की उम्र कम से कम ५५ वर्ष होगी; साधारणतया वे ६५ वर्ष की अवस्था में अवकाश ग्रहण करेंगे।

संघ–न्यायालय के अधिकार

(१) मौलिक-केन्द्र और इकाइयों के झगड़ों को निपटाना। (२) निवेदन सम्बन्धी—प्रान्तीय न्यायालयों के फैसले पर पुनर्विचार करना। (३) सलाह सम्बन्धी—राष्ट्रपति और मन्त्रि-परिषद् को कानून के विषय में सलाह देना।

राजकीय नौकरियां

किसी भी राज्य के शासन सूत्र को चलाने में कर्मचारियों की एक पूरी सेना रखनी पड़ती है। जनता की सेवा और सुचारु

शासन केलिये हमें ईमानदार और योग्य व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। साधारणतः राजकर्मचारियों का पतन देश की सुव्यवस्था के लिये अत्याधिक घातक है। नौकरशाही की बुराइयों, अत्याचार और रिश्वतखोरी से बचने के लिये हमें अपने शासन विधान में निम्न व्यवस्था करना लाभप्रद होगा:— (१) कानून की दृष्टि में एक राज-कर्मचारी और साधारण नागरिक समान होंगे। किसी भी राज-कर्मचारी को अनुचित व्यवहार करने पर साधारण न्यायालय द्वारा सामान्य नागरिक से भी कठोर दण्ड दिया जायेगा। (२) सरकारी नौकरियों में ईमानदार और सेवा-भाव से युक्त व्यक्ति ही लिये जायं; उसके लिये कर्मचारियों के चुनावमें योग्यता व ईमानदारी ही एकमात्र मापदण्ड होगी; आज की भाँति किसी धर्म, जाति या वर्ग विशेष के लिये नौकरियों में कोई स्थान सुरक्षित न होंगे। ३) कर्मचारियों की नियुक्ति के लिये एक संघ कर्मचारी नियुक्ति विभाग तथा प्रत्येक प्रान्त में 'प्रान्तीय-कर्मचारी-नियुक्ति-विभाग' होगा। संघ-शासन में किसी विशेष प्रान्त का एकाधिकार न हो जाय इसलिये प्रत्येक प्रान्त के नागरिकों को उनकी जनसंख्या के अनुसार नौकरियों में लिया जायेगा।

प्रान्तीय शासन

क्षत्रप (गवर्नर) और कार्यकारिणी-समिति प्रान्तीय-शासन को चलायेंगे। क्षत्रप तथा कार्यकारिणी समिति के चुनने व हटाने का ढङ्ग संघ से मिलता जुलता ही होगा। राष्ट्रपति और

मन्त्रि-परिषद् को जो अधिकार संघ शासन में प्राप्त हैं वह अध्यक्ष और कार्यकारिणी समिति को प्रान्तीय शासन में प्राप्त होंगे। संघ के विषयों में इन्हें संघ की आज्ञा का पालन करना होगा।

प्रान्त-सभा

प्रान्तसभा प्रांत की व्यवस्थापिका सभा होगी। प्रत्येक एक लाख व्यक्तियों का एक प्रतिनिधि होगा। समस्त प्रान्त प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में विभक्त होगा। प्रान्त के प्रत्येक वयस्क (स्त्री पुरुष दोनों) को मत देने का अधिकार होगा। प्रान्तीय चुनाव प्रत्यक्ष और सम्मिलित चुनाव प्रणाली से होंगे। चुनाव में खड़े होने के लिये २५ वर्ष से ऊपर की आयु अनिवार्य होगी।

प्रान्तीय धारा सभा को संघीय विषयों को छोड़ प्रत्येक विषय पर कानून बनाने का अधिकार होगा।

स्थानीय शासन

स्थानीय स्वशासन में हमें प्राचीन उपयोगी भारतीय परम्पराओं को अक्षुण्ण बनाये रखने का प्रयत्न करना चाहिये। सैंकड़ों वर्षों तक प्रबल विदेशी आक्रमणों और काल के क्रूर आघातों से भी हमारी स्थानीय ग्राम्य-संस्थायें नष्ट नहीं हुई थीं। ब्रिटिश शासन के प्रारम्भिक काल तक ये ग्राम्य-संस्थायें बनी रहीं किन्तु अंग्रेजी अदालतों और सरकारी अधिकारियों के अनुचित हस्तक्षेप से अब ये संस्थायें मृत-प्राय हो गई हैं। इनमें जीवन-सञ्चार की आवश्यकता है। प्रान्तीय काँग्रेसी सरकारें विविध कानूनों द्वारा

इनके पुनरुज्जीवन का सराहनीय कार्य कर रही हैं। इन प्रयत्नों के और अधिक बढ़ाये जाने की आवश्यकता है। स्वतन्त्र भारत में हम अंग्रेजों द्वारा बनाये गये कृत्रिम और आलसी ज़मींदार-वर्ग को तथा उनके द्वारा स्थापित निरंकुश और अनुत्तरदायी नौकरशाही को नष्ट करके, नये सिरे से ग्राम-पञ्चायतों की स्थापना करनी चाहिये ताकि देश के शासन में अधिक से अधिक भारतीय भाग ले सकें। और इस देश में सच्चे लोकतन्त्र का आदर्श पूरा हो सके।

नागरिक अधिकार

आजकल के शासन में नागरिक स्वतन्त्रता का प्रश्न दिन पर दिन जटिल होता जा रहा है। कई देशों में तो राष्ट्रीयता के नाम पर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की बलि दी जा चुकी है। कुछ ऐसे भी देश हैं जिनके शासन विधानों में नागरिक अधिकारों का बड़ा मनमोहक वर्णन किया गया है परन्तु वहां के शासनतन्त्र में नागरिक स्वतन्त्रता नाम की वस्तु ढूंढे नहीं मिलती।

स्वतन्त्र भारत के शासन विधान में, सिद्धान्ततः और व्यवहारतः प्रत्येक नागरिक को विचार व धर्म की पूरी आज़ादी होनी चाहिये। प्रत्येक नागरिक को उचित सीमा में सम्पत्ति रखने व भोगने का अधिकार प्रदान किया जाना चाहिये। उसे अपने विचारों को व्यक्त करने तथा उनका प्रचार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये क्योंकि व्यक्ति की स्वतन्त्रता ही वास्तव में राष्ट्र की स्वतन्त्रता का प्रमाण है।

राज्य के कर्तव्य

शासन सूत्र चलाने के अतिरिक्त भी आज के युग में राज्य-संस्था के कुछ महत्वपूर्ण और अनिवार्य कर्तव्य हैं। आधुनिक समय में एक अच्छा राज्य, व्यक्ति का सेवक, सहायक, रक्षक, शिक्षक और साथी सभी कुछ है। असल में आदर्श राज्य संस्था का ध्येय ही व्यक्ति का विकास करना है। अच्छे राज्य की यह जिम्मेदारी है कि वह अपने नागरिकों की बाह्य आक्रमण से रक्षा की समुचित व्यवस्था करे, उनके भरण पोषण के लिये उन्हें कार्य प्रदान करे, उनके स्वास्थ्य के लिये चिकित्सा का प्रबन्ध करे, आकस्मिक विपत्ति पड़ने पर उन्हें समुचित सहायता प्रदान करे यही एक अच्छी सरकार का कर्तव्य है।

हमारे शासन विधान में स्पष्ट उल्लेख होगा "राज्य अपने नागरिकों को शिक्षा, रोजी, चिकित्सा व आकस्मिक संकट में सहायता की गारन्टी देता है।"

सुरक्षा और राष्ट्रीय सेना

विज्ञान की अत्यधिक उन्नति होने के बावजूद मानव, नैतिक दृष्टि से अभीअत्यन्त पिछड़ा हुआ है। विज्ञान द्वारा विभिन्न राष्ट्रों में सहयोग के स्थान पर सन्देह का विकास अधिक हुआ है। एक राष्ट्र को दूसरे पड़ोसी राष्ट्र से सदा आक्रमण का भय लगा रहता

है। संसार के सभ्य कहलाने वाले राष्ट्र अपना अतुल धन और श्रम, समय और ज्ञान परस्पर विनाश के साधन जुटाने में व्यय कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में जब तक संसार के राष्ट्र इस रक्तपात की निरर्थकता को नहीं अनुभव करते, तब तक स्वतन्त्र भारत के लिये भी, कमजोर देशों को दबाने व दूसरे प्राणियों को सताने के लिये नहीं, बल्कि क्रूर आततायियों के आक्रमण से अपनी रक्षा के लिये एक राष्ट्रीय जल, थल और हवाई सेना का निर्माण आवश्यक होगा।

अब तक भारतीय सेना का ध्येय सिर्फ अंग्रेजी हकूमत को कायम रखना था। इसी लिये अंग्रेजों ने लड़ाका (Martial) व ग़ैर लड़ाका (Non-martial) जातियों के एक नये सिद्धान्त का आविष्कार किया जिसके अनुसार राष्ट्रीय वर्गों को गैर लड़ाका, और राजनैतिक दृष्टि से पिछड़ी हुई जातियों को लड़ाका घोषित किया गया। ऐसे प्रान्तों और ऐसी जातियों का सेना में बहुमत रखा गया जिनका कि राष्ट्रीयता के कुचलने में आसानी से प्रयोग किया जा सके। प्रान्त, जाति और वर्ग (Province, Community & Class) के आधार पर सेना का संगठन किया गया, ताकि स्वदेशी सेना में कहीं से भी ऐक्य और राष्ट्रीयता की भावना विकसित न हो सके, और उनमें से किसी इकाई के विद्रोह करने पर उन्हें आसानी से आपस में लड़ाया जा सके। इस प्रकार अंग्रेज़ी शासन में भारत के आर्थिक शोषण द्वारा अर्जित सम्पत्ति से गरीब हिन्दुस्तानी को रुपये का

लोभ दिखाकर साम्राज्य की रक्षा के लिये इस भाड़े की सेना (Mercenary Army) का निर्माण हुआ है। स्वतंत्र भारत में यह सब बुराइयां बर्दाश्त नहीं की जा सकतीं। हमें नये सिरे से भारतीय नेतृत्व में राष्ट्र हितैषी सिद्धान्तों के आधार पर स्वतंत्र भारतीय सेना (आज़ाद हिन्द फौज) का निर्माण करना होगा। प्रत्येक भारतीय उस सेना का सैनिक होगा। उन सैनिकों की राजभक्ति ४० करोड़ भारतीय नागरिकों के प्रति होगी, आज की भांति किसी सात समुद्र पार बैठे बादशाह के प्रति नहीं। हमारी सेना में, संघ में सम्मिलित प्रत्येक प्रान्त, जाति और वर्ग के व्यक्ति शामिल होंगे, और उनकी सम्मिलित सेना (Joint Battalions) होंगी जिससे सारी सेना में पूर्ण ऐक्य स्थापित हो सके, और इस प्रकार भारतवर्ष एक शक्तिशाली, संयुक्तराष्ट्र के रूप में दुनियां में अपनी हस्ती कायम रख सके।

आज अंग्रेज भारतवर्ष की रक्षा के नाम पर राष्ट्रीय आय का ५० फी सदी सेना पर व्यय कर रहे हैं। इस सेना में बड़े २ अफ़सर प्रायः अंग्रेज हैं, और देश को दरिद्र बनाकर जो धन संचित किया जाता है, उससे उन्हें ऊंची ऊंची तनख्वाहें व भत्ते दिये जाते हैं। ऐसी सेनायें देश के लिये विनाशकारी हैं। अतः स्वतन्त्र भारत के विधान में स्पष्ट उल्लेख होना चाहिये कि सैनिक शिक्षा ग्रहण करना संघ के प्रत्येक नागरिक का अनिवार्य कर्तव्य होगा। इस व्यवस्था का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि हमें बहुत बड़ी तादाद में स्थिर सेना (Standing Army)

न रखनी पड़ेगी। और इस प्रकार हम बहुत कम खर्च से देश की रक्षा कर सकेंगे। कुछ भी हो देश की रक्षा के लिये एक शक्तिशाली-सेना अनिवार्य है क्योंकि सेना की कमजोरी राष्ट्रों के पतन का एक बड़ा भारी कारण है।

प्रान्तों का पुनर्विभाजन

अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् के अध्यक्ष डा० पट्टाभिसीतारमैया का कहना है कि विधान निर्मात्री सभा के सन्मुख पहिला प्रस्ताव यह उपस्थित किया जाना चाहिये कि वह भाषा, संस्कृति और ऐतिहासिक परम्परा को ध्यान में रखते हुए प्रान्तों का पुनर्निर्माण करने और उनकी सीमाओं का निर्णय करने के लिये एक सीमा-समिति बैठाये। इस प्रस्ताव की रूप-रेखा पर विचार करने के लिये विधान-परिषद् का अधिवेशन प्रारम्भ होने से एक दिन पहिले भाषानुसार प्रान्त बनाने के समर्थकों की एक सभा कॉंग्रेस के प्रधान मन्त्री श्री शङ्करराव देव ने बुलाई थी। वस्तुतः स्वतन्त्र भारत को सुदृढ़ और शक्तिशाली बनाने के लिये उपर्युक्त आधार पर सङ्घ की इकाइयों का निर्माण अनिवार्य है।

भारत की स्वतन्त्रता को निकट लाने वाली एक मात्र संस्था कॉंग्रेस भी स्वीकार करती है कि भाषानुसार प्रान्तों की रचना की जाय। १९२० के बाद कॉंग्रेस का सङ्गठन भी इसी आधार

पर किया गया है। १९४६ की निर्वाचन घोषणा में काँग्रेस ने पुनः इस उद्देश्य को दोहराया है।

आजकल सरकारी प्रान्तों का बंटवारा सर्वथा अस्वाभाविक तथा साम्प्रदायिक कटुता को बढ़ाने वाला है। वह उनके प्राकृतिक जातिकृत अङ्ग विभागों को सूचित नहीं करता। उसके आधार पर हम स्वतन्त्र भारत के आदर्श सङ्घ का सङ्गठन नहीं कर सकते। भौगोलिक परिस्थितियों का भी प्रान्तों के विभाजन में स्थान है परन्तु फिर भी किसी देश के जीवन व इतिहास पर प्राकृतिक परिस्थिति से बढ़कर उसमें रहने वाली जातियों का प्रभाव पड़ता है। जातियों की पहिचान बहुत कुछ उनकी भाषाओं से होती है इसलिये हमें भाषा के आधार पर प्रान्तों का निर्माण करना चाहिये।

भारतवर्ष के कई परम्परागत प्रान्त या अङ्ग हैं, जो उसके पिछले इतिहास की, जातीय-जीवन की, इकाइयों को प्रकट करते हैं और भविष्य में भी करेंगे, जो उसके समूचे इतिहास की कशमकश का परिणाम है; जिनमें से प्रत्येक का पिछले इतिहास में प्रायः एक बने रहने का झुकाव है, जो भारत के जीवन में केन्द्रापमुखी (Centrifugal) प्रवृत्ति जागने पर अलग अलग राष्ट्र बन जाते थे और केन्द्राभिमुखी (Centripetal) प्रवृत्ति प्रबल होने पर एक भारतराष्ट्र के अङ्ग बन जाते रहे हैं। सच कहें तो भारत में एकता और विविधता दोनों हैं; उसकी एकता कई सहोदर जातियों की सङ्घात्मक एकता है। भारत

की विभिन्न जातियों की स्वाभाविक और परम्परागत भूमियाँ निम्न हैं:—(१ अन्तर्वेद (२) राजस्थान (३) महाकोशल ४) बिहार (५) नेपाल ; यह पांचों प्रान्त हिन्दी भाषा खण्ड में स्थित हैं (६) भूटान ७) आसाम (८) बङ्गाल (९) उड़ीसा (१०) आन्ध्र या तेलङ्गण (११) तामिलनाडु (१२) केरल (१३) कर्नाटक १४ महाराष्ट्र (१५) गुजरात (१६) सिन्ध (१७) बलोचिस्तान (१८) अफग़ानिस्तान (१९) कश्मीर (२० पंजाब। उपर्युक्त प्रान्तों की सीमायें इस प्रकार हैं:—(१ अन्तर्वेद—कुरुक्षेत्र से प्रयाग तक का इलाका अन्तर्वेद है ; इसमें कुमाऊं, गढ़वाल और कनौर भी सम्मिलित हैं। (२) राजस्थान - राजपूताना और मालवा राजस्थान के अन्तर्गत हैं। (३) महाकोशल-बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड और छत्तीसगढ़ का प्रदेश महाकोशल कहलाता है। (४) बिहार—प्रयाग के पूरब से राजमहल और रक्सौल से रांची तक बिहार फैला हुआ है ; झाड़खण्ड के पूर्वी अंश भी इसी के भाग हैं। (५) नेपाल—आधुनिक नेपाल के अतिरिक्त सिक्किम भी नेपाल का अंश है। (६) भूटान—आधुनिक भूटान और उसके पूरब का आसामोत्तर प्रदेश भूटान में है। (७) आसाम ज्यों का त्यों रहेगा केवल उसके सिलहट और सिलचर के जिले बङ्गाल में मिल जायेंगे। (८) बङ्गाल आधुनिक बङ्गाल के अतिरिक्त सिलहट और सिलचर के जिले भी इसमें शामिल होंगे, किन्तु इसका मिदनापुर का जिला उड़ीसा को मिलेगा ; उसमें छोटा नागपुर के सिंघभूम जिले का दलभूम अंश और झरिया-धनबाद अंश के सिवाय समूचा मानभूम

जिला, सन्थाल परगने का पूर्वी अंश और पूर्णियां जिले का महानदी से पूरब का हिस्सा इसी में सम्मिलित होंगे। (९) उड़ीसा—आधुनिक उड़ीसा विभाग के अतिरिक्त छोटा नागपुर विभाग के सिंघभूम जिले का बड़ा अंश, मिदनापुर जिले का कुछ भाग, रायपुर जिले का कुछ अंश और वहाँ से उड़ीसा विभाग तक की रियासतें, गंजाम जिला, विजगापट्टम की जयपुर एजन्सी और बस्तर का उत्तर-पूर्वी अंश इसमें सम्मिलित है। (१०) आन्ध्र या तेलङ्गण—महाराष्ट्र के पूर्व-दक्षिण तेलगू भाषा का समूचा क्षेत्र जिसमें विजगापट्टम से चित्तूर, कड़पऽ, अनन्तपुर और कुरनूल तक मद्रास डिवीजन के सब जिले, तथा औरङ्गाबाद, परभणि, नान्देर, भीर, उस्मानाबाद, रायचूर, लिङ्गसुगूर जिलों तथा बिदर, गुलबर्गा के पश्चिमी बड़े जिलों को छोड़कर समूची हैदराबाद रियासत जिसमें ८५ लाख तेलगू भाषी हैं और बस्तर का दक्षिणी अंश आन्ध्र के अन्तर्गत है। (११) तामिलनाडु—चित्तूर से दक्षिण में पूर्वी तट पर तामिलनाडु अवस्थित है। (१२) केरल—पश्चिमी तट पर मङ्गलार से कन्याकुमारी तक केरल का प्रदेश है। (१३) कर्नाटक—महाराष्ट्र के दक्षिण में बीजापुर, बेलगांव, धारवाड़, उत्तर व दक्षिण कनाडा, कोडगू, नीलगिरी, बल्लारी, रायचूर और उस्मानाबाद जिले समूची मैसूर रियासत, गुलबर्गा और बिदर जिलों का मुख्य पश्चिमी हिस्सा, अनन्तपुर जिले का मदगसिर, सेलम जिले की कृष्णागिरी, कोयम्बटूर जिले का कोलेगाल तथा शोलापुर जिले

पश्चिमी हिस्सा, अनन्तपुर

कृष्णगिरी, कोयम्बटूर जिले का कोलेगाल तथा शोलापुर

का शोलापुर ताल्लुका कर्नाटक के अङ्ग हैं। (१४) महाराष्ट्र—दक्षिण भारत का उत्तर-पश्चिमी भाग महाराष्ट्र है; यह दमन से गोआ तक विस्तृत है; बराड़, खानदेश, उसके पूरब वर्धा, नागपुर, भाण्डारा और चांदा जिले तथा बस्तर का प्रमुख अंश महाराष्ट्र में आते हैं। (१५) गुजरात--कच्छ, काठियावाड़, बड़ौदा, अहमदाबाद, बरोंच, खेड़ा, और सूरत गुजरात के अन्तर्गत हैं। (१६) सिन्ध - आधुनिक सिन्ध के अतिरिक्त बलोचिस्तान की लासबेला और कलात की अधित्यका तथा सिवि जिला असल में सिन्ध के अङ्ग हैं। (१७) बलोचिस्तान—हिंगोल नदी से पश्चिम का प्रदेश असल बलोचिस्तान है। (१८) अफगानिस्तान—दर्रा बोलान के उत्तर ब्रिटिश बलोचिस्तान के क्वेटा-पिशीन, लोरालाई और झोब जिले; सरकारी पश्चिोत्तर सीमाप्रान्त के वजीरिस्तान, कुर्रम, अफ़रीदी, तीराह, मुहमन्द, बाजौर, स्वात, बुनेर, युसफ़जई इलाकों से मिलकर भारतीय अफगानिस्तान बनेगा जिसकी भाषा पश्तो है। (१८) कश्मीर—पश्चिमोत्तर प्रान्त के चितराल, कोहिस्तान, दरद देश और कष्ट-वार कश्मीर के ही अङ्ग हैं। (१६) पंजाब—जेहलम और सिन्ध के बीच का पहाड़ी हजारा जिला, पेशावर, कोहाट, बन्नू और डेराइस्माइलखां ऐतिहासिक दृष्टि से पंजाब के जिले हैं; कृष्ण-गङ्गा और जेहलम के मध्य का प्रदेश पुञ्छ, रियासी, राजौरी, भिम्बर, जम्मू, कठुआ, बघाट स्टेट, सिरमौर, मण्डी, सुकेत और क्यूंठल भी पंजाब के अन्तर्गत हैं।*

*इस विषय के प्रामाणिक और विपद विवेचन के लिये देखिये श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार कृत "भारत भूमि और उसके निवासी"।

भाषा, इतिहास और संस्कृति के आधार पर प्रान्तों का वैज्ञानिक पुनर्विभाजन करना इतना सुगम नहीं है जैसा कि दीखता है। इसको व्यवहारिक स्वरूप देने में कई कठिनाइयां हैं। सबसे पहले तो हम यह मान लेते हैं कि रियासतों की सत्ता समाप्त हो चुकी है और दूसरे यह कि विद्यमान प्रान्तों के नेता इस प्रकार के वैज्ञानिक पुनर्विभाजन को एक दम स्वीकार कर लेंगे। जबकि व्यवहार में ऐसी कल्पना करना नितांत भ्रम होगा। अतः इस समस्या के दो ही हल हैं, (१) छोटी रियासतों को तुरन्त भाषानुसार प्रान्तों से मिला दिया जाय, परन्तु जब तक बड़ी रियासतों का लोप नहीं होता तब तक उन्हें न छेड़ा जाय। (२) हमारे शासन विधान में वर्तमान प्रान्तों के सीमा परिवर्तन के लिये ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि जो प्रान्त वैज्ञानिक आधार पर अपनी सीमायें बनाना चाहते हों वे दूसरे प्रान्तों जिनका कि उनकी सीमा से सम्बन्ध है, मिल कर इसका आपस में निर्णय करलें। शुरु में शायद कम ही प्रान्त इस बात के लिये रजामंद होंगे परंतु फिर भी यह आशा निराधार नहीं कि शनैः शनैः राष्ट्रीय-शिक्षा और राजनैतिक चेतना द्वारा जनता में यह भावना जागृत होगी जबकि वह इस परिवर्तन को सहर्ष स्वीकार कर सकेगी।

राज-काज और शिक्षा की भाषा

प्रान्तों के पुनर्विभाजन की भांति राष्ट्रभाषा और लिपि का प्रश्न भी विचारणीय है। पिछले डेढ़ सौ वर्षों से अंग्रेजों की

गुलामी करने के साथ साथ हम अंग्रेजी भाषा की भी गुलामी करते आये हैं। परन्तु परतन्त्रता को छोड़ने के साथ साथ हमें अंग्रेजी भाषा की दासता से भी मुक्त होना होगा तभी हम स्वतन्त्र भारत का पूर्ण विकास करने में समर्थ हो सकेंगे। उस समय हमें भारतवर्ष की मुख्य भाषा को ही राष्ट्र भाषा के सिंहासन पर बिठाना होगा। स्वतन्त्र भारत के स्वतन्त्र बच्चे उसी के द्वारा शिक्षा ग्रहण करेंगे। हमारे राजकीय कार्यों में उसी का व्यवहार होगा।

'जिन लोगों के मन में भारतवर्ष के अनैक्य का विचार घर कर गया है वह उसकी भाषाओं की बहुतायत की प्रायः दुहाई देते हैं; दूसरी तरफ बड़े जतन से सिद्ध किया जाता है कि उसकी एक राष्ट्रभाषा है, और उसके पक्षपाती यहाँ तक सपना लेते हैं कि किसी दिन सब भाषाओं का वही स्थान लेगी।'

भारतीय भाषाओं के प्रामाणिक विद्वान ज्यार्ज ग्रियर्सन के अनुसार भारतवर्ष में १७९ भाषायें और ५४४ बोलियां हैं, जिनमें से ११३ किरात (तिब्बत बर्मी परिवार की) हैं। किरात और आग्नेय (Austric) भाषा बोलने वालों की संख्या १०० पीछे ३ हैं उनमें से भी नागा पहाड़ियों में २९ नागा भाषायें हैं जिनमें से प्रत्येक के औसत बोलने वाले ११५०० हैं। सब मिलाकर नागा भाषियों की कुल आबादी दिल्ली शहर की आधी है।

'हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी को लोग कुछ समय से भारत की राष्ट्र भाषा के रूप में पहचानने लगे हैं। वह भारतवर्ष के

मुख्य और केन्द्रीय कम से कम चार प्रान्तों (अन्तर्वेद, बिहार, राजस्थान, महाकोशल) की व्यावहारिक प्रान्तीय भाषा है। अन्य प्रान्तों में भी वह सुगमता से समझी जाती है। इसके बोलनेवालों की संख्या करीब १५॥ करोड़ है। इतनी बड़ी संख्या या इससे अधिक संख्या संसार में दो ही एक और किसी भाषा बोलने वालों की होगी। इनमें से एक अंगरेज़ी है जो एक शक्ति शाली साम्राज्य की भाषा है, और उसके बोलने वालों की संख्या पिछले दो सौ सालों में ही इतनी बढ़ी है। दूसरी तरफ बिना किसी राजकीय सहारे के दलित दरिद्र दास जाति की भाषा होते हुए भी आज हिन्दी के बोलने वाले १५॥ करोड़ हैं, क्या यह भारतीय जाति की गहरी प्रसुप्त आन्तरिक-एकता का उज्ज्वल प्रमाण नहीं है? और क्या यह हमारे पुरखों की शताब्दियों तक भारतवर्ष को एक राष्ट्र बनाने की चेतन-चेष्टाओं का फल नहीं है?'

हिन्दी भाषा जितनी व्यापक है, नागरी लिपि उससे कहीं अधिक व्यापक है। उसे हिन्दी के अतिरिक्त मराठी, पर्बतिया, संस्कृत तथा कभी कभी पंजाबी और सिन्धी भी बरतती हैं। गुरमुखी, गुजराती और बङ्गला लिपियों की नागरी से गहरी समानता है। इसके अतिरिक्त भारतीय वर्णमाला नागरी लिपि से भी अधिक व्यापक है; उसकी एकता एक अपवाद को छोड़कर समूचे भारत की लिपि सम्बन्धी एकता को सूचित करती है। वर्णमाला की तरह भारतीय परिभाषाओं की एकता भी अत्यन्त

व्यापक है। विज्ञान का प्रचार होने के लिये, गम्भीर विचारों को प्रकट करने के लिये पारिभाषिक शब्द जहाँ तक ठेठ बोलचाल भाषाओं के हो सकें उतना उत्तम किन्तु ऊंची परिभाषायें समूचे भारत के लिये संस्कृत की ही सुविधाजनक होंगी।*

भाषा के सम्बन्ध में यह बात ध्यान रखने योग्य है कि समूचे भारत की एक सङ्घात्मक एकता है; उसके स्वाभाविक प्रान्त हैं, उनकी स्वाभाविक और स्वतन्त्र भाषायें हैं। इसलिये हमारी सम्मति में भारतीय सङ्घ की भाषा हिन्दी को बनाया जा सकता है, जो समस्त भारत की मुख्य भाषा है। प्रान्तों में प्रान्तीय भाषाओं का व्यवहार सर्वथा उचित है। शिक्षण संस्थाओं में प्रान्तीय भाषाओं, राष्ट्र-भाषा तथा विदेशी भाषाओं की शिक्षा का प्रबन्ध भी आवश्यक है। समस्त सरकारी कार्यों में प्रान्तीय और राष्ट्रीय भाषा का प्रयोग साथ साथ किया जा सकता है।

स्वतन्त्र भारत में रियासतों की सत्ता

विधान परिषद के आगे रियासतों का भी एक बड़ा जटिल प्रश्न है। अब तक रियासतों को ब्रिटिश सरकार ने अपने शासन का स्तम्भ बना रखा था। ब्रिटिश साम्राज्य की छत्रछाया में निरंकुश राजाओं को अपनी प्रजा के साथ मनमानी करने का अधिकार

---

* भारतभूमि और उसके निवासी।

मिला हुआ था। ब्रिटिश सत्ता समाप्त होने पर इन रियासतों का क्या होगा? क्या ये रियासतें अपनी स्वतन्त्र सत्ता को खो देंगी या बनाये रखेंगी? राजाओं का यह दावा है कि उनकी सत्ता स्वतन्त्र ही रहनी चाहिये। दूसरी ओर यदि हम वहां की प्रजा का विचार करते हैं तो हमें यह मानना पड़ेगा कि वर्तमान राजा प्रजा के लिये घातक ही सिद्ध हो रहे हैं। उनसे प्रजा का कल्याण होने के स्थान पर प्रजा के दुःख दारिद्र्य की ही वृद्धि हुई है। प्रजा के राजनैतिक, साँस्कृतिक व आर्थिक हितों को निर्दयतापूर्वक कुचला गया है। रियासती-प्रजा इस स्थिति को असह्य समझती है किन्तु राजाओं को बिलकुल ही समाप्त कर दिया जाय अथवा इस समस्या का कोई और हल है?

भारतवर्ष में छोटी बड़ी ५०० से अधिक रियासतें हैं और इनकी जन-संख्या १० करोड़ है। समस्त भारत की २५% जनता इनमें निवास करती है। भाषा, संस्कृति, जाति, धर्म व रहन-सहन प्रत्येक दृष्टि से रियासतें शेष भारत के समान हैं। इनमें बसने वाली जनता तथा ब्रिटिश भारत की जनता के समान हित और महत्वाकांक्षायें हैं। दोनों ही ने भारतीय स्वतन्त्रता को समीप लाने में अपना पूर्ण योग दिया है। आजकल रियासतों के नागरिकों को दुहरी गुलामी करनी पड़ रही है। वहाँ सामन्तशाही एकतन्त्र तथा निरंकुश दुश्शासन का बोलबाला है, राजनैतिक दृष्टि से वह बहुत पिछड़ी हुई हैं। जब हम भारतीय स्वतन्त्रता की बात करते हैं तो उसमें रियासती जनता की

स्वतन्त्रता सम्मिलित होती है। रियासती जनता के लिये उस स्वतन्त्रता का अर्थ ब्रिटिश प्रभाव के साथ साथ अनुत्तरदायी देशी राजाओं के हाथ से भी उनकी मुक्ति है। देश की आन्तरिक शक्ति, एकता और उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि वे भारतीय सङ्घ की इकाइयाँ हों। प्रत्येक दशा में यह अनिवार्य है कि छोटी रियासतों को संस्कृति और भाषानुसार विभिन्न प्रान्तों में मिला दिया जाय और उनके शासकों को कुछ वार्षिक भत्ता देकर छुट्टी दी जाय। बड़ी रियासतें १०-१२ से अधिक न बचेंगी। उन रियासतों के शासकों को इङ्गलैण्ड की भाँति केवल वैधानिक प्रधान (नाम-मात्र का राजा) मानने के अलावा अन्य कोई विशेषाधिकार नहीं दिया जाना चाहिये। सार्वभौम सत्ता जनता में ही होनी चाहिये तथा रियासतों की शासन प्रणाली शेष भारत की भाँति जन-प्रतिनिध्यात्मक तथा जनता के प्रति उत्तरदायी होनी चाहिये। रियासतें भी सङ्घ की दूसरी इकाइयों की भाँति स्वशासन व स्वतन्त्रता का उपयोग कर सकेंगी।

भारतीय विधान परिषद् ने एक समझौता समिति रियासती राजाओं के प्रतिनिधियों से बात करने के लिये नियुक्त की है। जो यह निश्चय करेगी कि किस प्रकार विधान-परिषद् में रियासतों के प्रतिनिधि लिये जांय। विधान-परिषद् की समिति का यह कर्तव्य है कि वह परिषद् में रियासती जनता के बालिग मताधिकार द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों को ही लेना स्वीकार करें। राजाओं की भी दूरदर्शिता इसी में है कि वे प्रजा को

सार्वभौम सत्ता को स्वीकार करलें। फिर भी यदि वे इसके लिये रज़ामन्द नहीं हों तो हमें विशेष चिंतित होने की आवश्यकता नहीं क्योंकि उनके बिना भी स्वतन्त्र भारत का विधान बन सकता है। मंत्रिमण्डल योजनानुसार भी भारतीय विधान बनने के बाद ब्रिटिश भारतीय सार्वभौम सत्ता और संरक्षण स्वतः समाप्त हो जायेंगे। और तब प्रजा राजाओं से स्वयं निबट लेगी। इस प्रकार प्रजा अपने अधिकार भी आसानी से प्राप्त कर लेगी। किसी भी दशा में स्वतन्त्र भारत के संघ की सीमा में मध्यकालीन एकतन्त्र शासन नहीं सहन किया जा सकता।

पाकिस्तान का सवाल

पहिले यह बताया जा चुका है कि साम्प्रदायिकता की समस्या हमारी स्वतन्त्रता के मार्ग में किस प्रकार बाधक बनी हुई है। इस समय विधान-परिषद् के आगे भी सब से बड़ी अड़चन इसी सवाल से पैदा हुई है। मुसलमानों की सब से बड़ी संस्था मुसलिम-लीग पाकिस्तान पर अड़ी हुई है। ब्रिटिश-मिशन के प्रस्तावों को कार्यान्वित करने के लिये पहले लीग इस आशा से तैयार हो गई थी कि ब्रिटिश-योजना में पाकिस्तान का मूल तत्व विधान-परिषद् के विभिन्न प्रान्तों की गुटबन्दी द्वारा उसे प्रदान किया गया है। किन्तु काँग्रेस ने मुसलिम-लीग

की उपर्युक्त माँग स्वीकार न की। वे ब्रिटिशमंत्रिमण्डल के प्रस्तावों का अर्थ मुसलिम-लीग से बिलकुल भिन्न लगाते रहे। इस पर मुसलिम-लीग ने विधान-परिषद् के वहिष्कार का निश्चय किया। ब्रिटिश सरकार ने दोनों दलों के प्रमुख नेताओं को लण्दन बुलाकर इस मामले में समझौता कराना चाहा ताकि विधान परिषद् की कार्यवाही निर्विघ्न रूप से चल सके, किन्तु ऐसा कोई समझौता न हो सका। ब्रिटिश सरकार ने मुसलिम-लीग द्वारा की गई प्रस्तावों की व्याख्या को सही माना। इसका परिणाम वह हुआ कि मुसलिम-लीग अभी तक इस विधान-परिषद् में कोई भाग नहीं ले रही है। जब तक वह इसका वहिष्कार करती है विधान-परिषद् की सफलता अनिश्चित है।

वस्तुतः पाकिस्तान की समस्या का हल हुए विना देश का कोई विधान नहीं चल सकता, देश की आज़ादी हासिल नहीं की जा सकती। कोई नया विधान बनाने से पहले हमें पाकितान की समस्या का हल करना होगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दू-मुसल्मानों में पहले से मौजूद परस्पर घृणा, अविश्वास और भेदों को अङ्गरेजों की 'फूट डालो और शासन करो की नीति' ने खूब बढ़ाया। पिछली सदी के अन्त से ही ब्रिटिश-अधिकारी मुसलमानों को अपनी 'लाड़ली बीबी' बनाने लगे। १६०७ में एक उच्च ब्रिटिश अधिकारी के आदेश पर मुसलमानों का एक प्रतिनिधि-मण्डल लॉर्ड मिण्टो से मिला। उसने मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन की माँग की। उनकी

यह माँग झटपट मान ली गई क्योंकि इस प्रकार अङ्गरेज-शासक राष्ट्रीय-महासभा (काँग्रेस) के बढ़ते हुए प्रभाव को क्षीण करना चाहते थे। इसी समय मुसलिम-लीग की स्थापना हुई और हमारे देश में ब्रिटिश अधिकारियों की छत्रछाया में साम्प्रदायिकता का विष-वृक्ष पनपने लगा। ज्यों ज्यों काँग्रेस स्वतन्त्रता के पथ पर अग्रसर होती गई त्यों त्यों हिन्दू-मुसलिम-वैमनस्य बढ़ता गया। १६२० के सत्याग्रह-आन्दोलन में हिन्दू-मुसलमान कन्धे से कन्धा भिड़ाकर ब्रिटिश सरकार से अपने अधिकारों के लिए लड़े थे। १६३० के स्वातन्त्र्य-आन्दोलन में मुसलमान और हिन्दुओं का पुराना सौहार्द्र नहीं रहा था और वे काँग्रेस-आन्दोलन से बहुत कुछ उदास थे। १६३६ तक यह स्थिति पैदा हो गई कि वे काँग्रेस के उग्र विरोधी बन गये और काँग्रेस मन्त्रि-मण्डलों के पद-त्याग पर प्रसन्नता प्रकट करने के लिए सारे देश में मुसलिम-लीग द्वारा 'योमेनजात' (मुक्ति-दिवस) मनाया गया। इस सम्बन्ध में यह विचित्र बात है कि भारतवर्ष में राजनैतिक चेतना के साथ साथ साम्प्रदायिकता अर्थात दो राष्ट्र की भावना का विकास हुआ है। 'राजनैतिक-चेतना' काँग्रेस के त्याग, बलिदान और सङ्घर्ष का परिणाम है। जब कि दो राष्ट्र की भावना मुसलिम-लीग के प्रचार और ब्रिटिश फूटनीति की उपज है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अङ्गरेजी नीति ने हिन्दू-मुसलिम वैमनस्य को बढ़ाया है, किन्तु पिछले बीस वर्षों में इसके बढ़ने

का एक बड़ा भारी मनोवैज्ञानिक कारण है। गलत या सही, मुसलमानों के दिलों में यह भावना बद्धमूल की गई है कि स्वराज्य स्थापित होने पर केन्द्रीय सरकार में हिन्दुओं का बहुमत होगा, अतः हिन्दू भारतवर्ष के शासक होंगे। यह स्वराज्य हिन्दू राज्य ही होगा। उसमें मुसलमानों का धर्म, संस्कृति और सभ्यता सदैव बड़े खतरे में रहेंगे। वे अङ्गरेजों की गुलामी से छूटकर हिन्दुओं की दासता के पाश में जकड़ जायेंगे। इस दासता से मुक्त होने के लिए एकमात्र उपाय मुस्लिम-बहुल प्रान्तों में स्वतन्त्र मुसलिम राज्य स्थापित करना है। इन स्वतन्त्र राज्यों को वे पाकिस्तान का नाम देते हैं।

पाकिस्तान की समस्या पर विचार करते हुए हम प्रायः उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक पहलू की उपेक्षा करते हैं। पाकिस्तान का मूल आधार यही मनोवैज्ञानिक भावना है। यह भावना अब मुसलमानों में वहम का रूप धारण कर चुकी है। काँग्रेस ने उनके इस वहम को दूर करने के लिए अनेक प्रयत्न किये। मुसलमानों को अधिक से अधिक राजनैतिक रियायतें प्रदान कीं लेकिन उसका यह सारा प्रयत्न बेकार साबित हुआ क्योंकि पाकिस्तान एक अल्पसंख्यकों की राजनैतिक समस्या न होकर वास्तव में एक मनोवैज्ञानिक समस्या है अतः उसका हल मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से ही किया जाना चाहिये।

इस समय मुसलमानों में अलग राष्ट्र होने की भावना तथा 'हिन्दु-भीति' पाकिस्तान की माँग का मुख्य आधार बनी हुई है।

आप मुसलमानों को कितनी भी सुविधायें दें वे किसी हालत में पाकिस्तान के बिना हिन्दुओं के साथ रहने को तैयार नहीं हैं। जब हिन्दू पाकिस्तान का विरोध करते हैं उस समय मुसलमानों को यह विश्वास हो जाता है कि पाकिस्तान वास्तव में हमारे लिए लाभप्रद है क्योंकि हिन्दू उसका विरोध कर रहे हैं। इस समय मुसलमानों को युक्तियों द्वारा वह विश्वास दिलाना कठिन है कि पाकिस्तान अन्ततोगत्वा उनके लिए हानिकारक और आत्मघातक सिद्ध होगा। राष्ट्रीय हिन्दू नेताओं की ओर से, पाकिस्तान की स्थापना में मुसलमानों को होने वाली हानियों का विस्तार से प्रतिपादन किया जाता है किन्तु वह युक्तियाँ बहरे कानों पर पड़ती हैं क्योंकि ये मुसलमानों के वहम का इलाज नहीं है।

एक पुरानी कहावत है कि 'वहम की दवाई लुकमान के भी पास नहीं' है। हमारे देश के लुकमान पिछले तीस वर्षों से मुसलमानों के इस वहम का इलाज कर रहे हैं किन्तु सब तरह रियायतें और सुविधायें देकर भी वे इस मर्ज का इलाज करने में सफल नहीं हुए। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि इस वहम का इलाज करते हुए कई बार मुसलमानों की अनुचित मांगें भी हिन्दुओं को स्वीकार करनी पड़ी हैं, उन्हें धारासभाओं और सरकारी नौकरियों में उनकी संख्या के अनुपात से अधिक स्थान दिये गये हैं। उनकी भाषा जबर्दस्ती बहुसंख्या को पढ़नी पड़ी है। उनको यह सब रियायतें हिन्दू हितों की

थोड़ी बहुत बलि देकर ही दी गई हैं। मुसलमानों को सन्तुष्ट करने की इस नीति का यह परिणाम हुआ है कि उनकी मांगें सुरसा के मुख की भांति निरन्तर बढ़ती गई और उन्हें सन्तुष्ट रखने के लिये हमें देश के शासन विधान में भी ऐसे परिवर्तन करने पड़े जिन्हें काँग्रेस सामान्य अवस्था में कभी स्वीकार न करती फिर भी काँग्रेस उन्हें सन्तुष्ट करने में सर्वथा असफल रही। संसार की वर्तमान स्थिति को देखते हुए सर्वत्र केन्द्रीय सरकार को शक्तिशाली बनाया जाता है किन्तु काँग्रेस ने मुसलिम लीग को अपने साथ लेने के लिए केन्द्र के कम से कम अधिकार स्वीकार किये। किन्तु फिर भी मुसलिम-लीग काँग्रेस को विधान-परिषद् में सहयोग नहीं दे रही है क्योंकि मुसलमान अपने को अलग राष्ट्र समझने के नाते एक स्वतन्त्र मुसलमान राज्य स्थापित करना चाहते हैं और अभी तक उनके दिलों से हिन्दू-राज्य का भय दूर नहीं हुआ है। इस भावना और भय को दूर करने का वास्तविक उपाय तो यह है कि हम मुसलमानों के सद्भाव, प्रेम, सौहार्द्र और विश्वास को प्राप्त कर सकें। वर्तमान अवस्था में हम मुसलमानों का विश्वास प्राप्त करने के लिए बिलकुल उल्टे उपायों का अवलम्बन कर रहे हैं। वे जिस चीज को प्यार करते हैं हम उससे घृणा; मुसलमान जिस चीज़ को लाभदायक समझते हैं हम उसी को उनके लिए हानिकर बता रहे हैं। इससे उनके सन्देह और बढ़ रहे हैं। इन सन्देहों को दूर करने का एकमात्र उपाय यही है कि यदि देश का कल्याण हो, तो पाकिस्तान की माँग को स्वीकार कर लिया जाय। यहाँ

मुसलमानों के सहयोग, सौहार्द्र और विश्वास प्राप्त करने का उपाय है।

यदि मुसलमानों को पाकिस्तान में घाटा है और वे समझाने पर भी उस घाटे को उठाने को तैयार हैं तो हमें उनको यह घाटा उठाने देना चाहिये। यदि हम उन्हें बलपूर्वक इसके लिये रोकेंगे तो वे हमारे शत्रु ही बनेंगे सहयोगी नहीं। किन्तु यदि हम उनकी माँग को स्वीकार करते हैं तो यह सम्भव है कि हमारे आपसी सम्बन्ध मित्रतापूर्ण रहें और जब वे पाकिस्तान में हानि का अनुभव करें तो बाद में हमारे साथ मिल जाँय। वर्तमान समय में उनकी माँग का विरोध करके हम सदा के लिये अपने सम्बन्धों को अधिकाधिक वैमनस्यपूर्ण बना रहे हैं। अतः वर्तमान स्थिति में पाकिस्तान की समस्या का इसके सिवाय कोई हल नहीं कि मुसलमानों की इस माँग को खुल्लमखुल्ला स्वीकार कर लिया जाय।

पाठकों को सम्भवतः यह एक क्रान्तिकारी हल प्रतीत होगा किन्तु लेखक की सम्मति में यही साम्प्रदायिक समस्या के हल करने का एकमात्र उपाय है। पाकिस्तान का समर्थन करते हुए हमें दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को स्वीकार करना पड़ता है। कुछ लोगों को वास्तव में यह जानकर आश्चर्य होगा कि हिन्दू महासभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री विनायक दामोदर सावरकर और मुसलिम-लीग के सर्वेसर्वा मोहम्मद अली जिन्ना दो राष्ट्र के सिद्धान्त पर एक मत हैं। वे केवल इस विषय पर एक मत ही नहीं बल्कि

हिन्दू मुसलमानों के पृथक राष्ट्र होने पर जोर देते हैं। इसके विपरीत कॉंग्रेसी नेता सदा से यह कहते आये हैं कि हिन्दू मुसलमान एक राष्ट्र हैं। मुसलमान भी अपने को १९३७ तक हिन्दुस्तानी राष्ट्र की एक अल्प संख्या समझते रहे। इसके बाद उनमें पृथक राष्ट्रीयता की प्रसुप्त भावना जागृत हो उठी, जो आज पाकिस्तान के रूप में प्रकट हो रही है। यही कारण है कि अधिक से अधिक रियायतें जो एक अल्प संख्या को आसानी से सन्तुष्ट कर सकती हैं वे एक राष्ट्र को विना पूर्ण स्वतन्त्रता के सन्तुष्ट नहीं कर सकती. चाहे उस स्वतन्त्रता में उस राष्ट्र को कष्ट ही हो।

कोई पूछ सकता है कि उस राष्ट्रीयता की क्या पहिचान है? 'राष्ट्रीयता एक सामाजिक अनुभूति है, ऐक्य की सामूहिक भावना है, जो कि उसके वशीभूत व्यक्तियों में भाईचारे का अनुभव कराती है। यह चेतना की वह अनुभूति है जो इस भावना से मुक्त लोगों को आपस में मिलाती है, तथा तुल्य भावना से रहित व्यक्तियों को उनसे अलग करती है। यह वह इच्छा है जो किसी दूसरे वर्ग को अपना समझने से रोकती है।' यही राष्ट्रीय भावना का सार है। इस व्याख्या को मुसलमानों पर लागू कीजिये। क्या यह सत्य नहीं कि मुसलमान एक अलग वर्ग है? क्या यह सत्य नहीं कि उनमें 'एक अलग राष्ट्र की चेतना है? क्या यह सत्य नहीं कि उनकी यह प्रबल इच्छा है कि वह अपने ही वर्ग को अपना समझें, हिन्दू वर्ग को नहीं?

अगर इसका उत्तर 'हां' में है, तो हमें मुसलमानों को एक राष्ट्र मानने में कोई आपत्ति न होनी चाहिये। हिन्दू-मुसलमानों को एक राष्ट्र सिद्ध करने के लिए हिन्दुओं को यह दिखाना होगा कि विभिन्नता व पृथकता के तत्त्वों के बावजूद भी हिन्दू व मुसलमानों में एकता के तत्त्व अधिक हैं, जो हिन्दू और मुसलमानों में एक दूसरे वर्ग को अपना समझने की भावना पैदा करते हैं। हिन्दू जो मुसलमानों को पृथक राष्ट्र मानने से इनकार करते हैं, कुछ उन सामाजिक बातों पर जोर देते हैं, जो कि हिन्दू और मुसलमानों में एक हैं। सब से पहले कहा जाता है कि सारे भारतवर्ष के हिन्दू-मुसलमान एक ही जाति (Race) के वंशज हैं। वस्तुतः यह सत्य है कि एक मद्रासी मुसलमान में एक पंजाबी मुसलमान की अपेक्षा एक मद्रासी ब्राह्मण से कहीं अधिक जातीय (Racial) एकता है। दूसरे, हिन्दू और मुसलमानों की भाषा सम्बन्धी एकता पर जोर दिया जाता है। यह कहा जाता है कि मुसलमानों की अपनी कोई एक राष्ट्र भाषा नहीं है, जो उन्हें एक अलग भाषा वर्ग में रख सके। पंजाब में हिन्दू-मुसलमान दोनों पंजाबी, सिन्ध में दोनों सिन्धी, बङ्गाल में दोनों बङ्गाली, गुजरात में दोनों गुजराती, महाराष्ट्र में दोनों मराठी, तामिलनाडु में दोनों तामिल, आन्ध्र में दोनों तेलगू, केरल में दोनों मलयालम् और बिहार में दोनों बिहारी भाषा बोलते हैं। तीसरे इस बात पर जोर दिया जाता है कि भारतवर्ष वह भूमि है, जिस पर हिन्दू और मुसल-

मान दोनों सदियों से साथ साथ रहे हैं। यह न अकेले हिन्दुओं की भूमि है और न केवल मुसलमानों की। इन बातों के अलावा कुछ सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन के बहुत से रीति-रिवाजों की एकता की ओर ध्यान दिलाया जाता है।

निस्सन्देह उपर्युक्त सब बातें सही हैं। परन्तु क्या इन सब बातों ने, हिन्दू और मुसलमानों में परस्पर एक दूसरे को निकटतर अनुभव करने की इच्छा पैदा की है? ऐतिहासिक अनुभवों से यह सिद्ध हो चुका है कि एक जाति (Race), एक भाषा, एक रिहाइश (Habitat) जनता को एक राष्ट्र में ढालने के लिए काफी नहीं हैं। रेनाँ ने बड़ी प्रामाणिकता से दर्शाया है कि जाति (Race) के आधार पर राष्ट्रों की पहिचान करना असम्भव है। वस्तुतः संसार में कोई शुद्ध जाति नहीं है। दूसरे नाहीं भाषा एक राष्ट्र बनाने के लिये आवश्यक है। अमेरिका और इङ्गलैण्ड एक भाषा भाषी होते हुए भी अलग अलग राष्ट्र हैं। इसके विपरीत स्विटजरलैण्ड जो कई हिस्सों की सहमति से बना है, चार भाषा-भाषी होते हुए भी एक राष्ट्र है। मनुष्य में भाषा से भी बड़ी चीज है–'एकता की इच्छा'—यह इच्छा ही बहुभाषा-भाषी देश होते हुए भी स्विटज़रलैण्ड को एक राष्ट्र बनाये हुए है। तीसरे, नाहीं यह ज़रूरी है कि एक देश में रहने वाले व्यक्ति एक ही राष्ट्र हों। एक देश में रहते हुए भी वे कई राष्ट्र हो सकते हैं।

यह बताने के बाद, कि केवल जाति, भाषा और भूमि ही

एक राष्ट्र वनाने के लिये काफी नहीं, यह वताना जरूरी है कि आखिर राष्ट्र क्या है ? किसी राष्ट्र के वनाने में कौन सा सब से महत्त्वपूर्ण तत्त्व काम करता है ? प्रख्यात फ्रेंच लेखक रेनाँ के शब्दों में, "एक राष्ट्र एक जीवित आत्मा है, एक आध्यात्मिक सिद्धान्त है। दो चीजें जो वस्तुतः एक ही हैं, इस आत्मा को, इसआध्यात्मिक सिद्धान्त को वनाती हैं। पहली है—पूर्वजों की समान स्मृतियाँ; दूसरी है—वास्तविक रजामन्दी, एक साथ रहने की अभिलाषा, पूर्वजों की देन को सुरक्षित व संयुक्त रखने की इच्छा।"

"जैसे मनुष्य एकाएक नहीं वनता उसी भांति राष्ट्र भी अतीत के प्रयत्नों, वलिदानों और विश्वासों से वनता है। वीर-पूजा स्वाभाविक ही है, क्योंकि हम अपने पूर्वजों की ही उपज हैं। वीरतापूर्ण अतीत, महान् पुरुष, यश, वह सामाजिक पूंजी हैं, जिससे राष्ट्रीय भावना की नींव पड़ती है। अतीत की समान उज्ज्वल स्मृतियां, वर्तमान में सम्मिलित इच्छा, एक साथ मिलकर महान् कार्यों का किया जाना, वह अनिवार्य शर्तें हैं, जो एक राष्ट्र को वनाती हैं। जिस हद तक हमने उसके लिये वलिदान किये हैं, तकलीफें उठाई हैं, उतना ही हम उसे प्यार करते हैं। हम प्यार करते हैं उन वलिदानों को जो हमने किये हैं; उन तकलीफों कोजो हमने सही हैं। हम प्यार करते हैं, उस भवन को जिसे हमने वनाया है, और जिसे हम भावी संतति के लिये

विरासत में छोड़ेंगे। दुःख और सुख की समान स्मृतियाँ हमें एक करती हैं।"

हिन्दू और मुसलमानों में क्या कोई ऐसी समान ऐतिहासिक स्मृतियां हैं, जिन पर हिन्दू और मुसलमान समानरूप से शोक या हर्ष कर सकें? इतिहास में हिन्दू पृथ्वीराज, प्रताप, शिवाजी गुरुगोविन्दसिंह और बन्दा वैरागी को पूजते हैं—जो इस देश के सम्मान और स्वतन्त्रता के लिये मुसलमानों के विरुद्ध लड़े थे। मुसलमान बिनकासिम, महमूदगजनवी और मुहम्मद गोरी जैसे आक्रमणकारियों और अलाउद्दीन और औरंगजेब जैसे शासकों को अपना राष्ट्रीय नेता समझते हैं, जिन्होंने हिन्दुओं को दबाया था। धार्मिक क्षेत्र में हिन्दू राम, कृष्ण और गौतम को, मुसलमान हजरत मुहम्मद, अली, उसमान, उमर और अबु बकर को अपना आराध्यदेव मानते हैं। हिन्दुओं की प्रेरणा का श्रोत यदि रामायण और महाभारत है तो मुसलमानों का कुरान और हदीस। राजनैतिक क्षेत्र में यदि महात्मा गाँधी हिन्दुओं के एकमात्र प्रतिनिधि हैं तो मुसलमानों के मिस्टर जिन्ना।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि हिन्दू मुसलमानों को अलग करनेवाली भावनायें उन्हें आपस में मिलाने वाली भावनाओं की तुलना में अधिक शक्तिशाली हैं। परन्तु बावजूद इसके भी एक राष्ट्र के निर्माण में विस्मरण (Forgetfulness) का बड़ा महत्व है। यदि हिन्दू और मुसलमान अपने अतीत की

वह कटुतापूर्ण स्मृतियां भूल जायें जिनकी याद आपस में घृणा पैदा करती है; और वर्तमान में उनमें साथ रहने की इच्छा हो तो भारत का भविष्य बिलकुल बदल सकता है आज के दो राष्ट्र तब एक राष्ट्र बन सकते हैं। किन्तु दुःख है कि वे अपने अतीत को न भूलेंगे। उनका अतीत उनके धर्म में व्याप्त है अतः उनसे अपने धर्म के त्याग की आशा जिसे वह प्राण से प्यारा समझते हैं, कमसे कम अभी नहीं की जा सकती।*

यहां यह बता देना आवश्यक है कि एकमात्र अलग राष्ट्र होने से ही एक अलग राज्य का निर्माण नहीं किया जासकता राष्ट्रीयता को एक ऐसी भूमि ढूंढनी होगी, जहां वह बस सके। क्या भारतवर्ष में ऐसे प्रदेश हैं जहां मुस्लिम राष्ट्रीयता रह सके? क्या मुस्लिम जाति के पास ऐसे एकतत्वीय (Homogeneous) प्रदेश हैं, जिन्हें वह अपना कह सके? यदि हैं, तो उनकी क्या सीमायें हैं?

मुस्लिम-लीग आज मुस्लिम राष्ट्र के नाम पर वर्तमान सीमाप्रान्त, पंजाब, सिन्ध और बंगाल को पाकिस्तान में सम्मिलित करने की मांग कर रही है। किन्तु यदि वर्तमान प्रान्तों की सीमाओं से पाकिस्तान बनाया जाय तो वस्तुतः इससे दो राष्ट्रों के साथ २ रहने से उत्पन्न दोष दूर नहीं किये जा सकते। उन्हें दूर करने के लिये पाकिस्तान की सीमाओं का पुनर्निर्धारण आवश्यक है। मुस्लिम बहुल प्रान्तों में रहने वाले हिन्दुओं के हित के लिये यह जरूरी है। वर्तमान समय में तो केन्द्रीय सरकार

*पाकिस्तान या पार्टीशन—अम्बेडकर

पूर्वी पाकिस्तान में—(१) बङ्गाल व आसाम के कुछ जिलों में मुसलमानों का आधिक्य है, कुछ में हिन्दुओं का। (२) हिन्दू और मुसलिम जिले एक दूसरे के बीच में स्थित नहीं हैं, वरन् वे अलग अलग प्रदेश बनाते हैं। (३) बङ्गाल व आसाम के मुसलिम-बहुल आबादी के जिले आपस में मिले हुए हैं।

इस प्रकार पंजाब से १५ जिले, बङ्गाल से ११ जिले और सिलहट जिला छोड़कर समस्त आसाम जिसमें हिन्दू बहुमत है, उन प्रान्तों से अलग कर देने से मिश्रित-राज्य (Composite State) के बजाय वहाँ एकतत्त्वीय (Homogenous) मुसलिम राज्य बनाना पूर्णतया सम्भव है। अब सब से महत्त्व-पूर्ण प्रश्न यह रह जाता है कि क्या मुसलमान पंजाब व बङ्गाल के सीमापरिवर्तन को स्वीकार कर लेंगे ? यदि मुसलमान इस पर आपत्ति करते हैं तो उन्हें मालूम हो जाना चाहिये कि जिस आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के आधार पर वे मुसलमानों के लिये पाकिस्तान की माँग करते हैं, उसी आधार पर वहाँ के हिन्दुओं को आत्मनिर्णय का अधिकार न देना उस सिद्धान्त कीही अन्त्येष्टि कर देना है। किसी भी हालत में मुसलमानों को हिन्दू बहुल प्रदेशों पर बिना उनकी इच्छा के जबर्दस्ती हकूमत करने का अधिकार नहीं दिया जा सकता। यदि मुसलमान वर्तमान प्रान्तों के आधार पर पाकिस्तान बनाने की ज़िद करते हैं, तो उन्हें यह समझ लेना चाहिये कि जो हिन्दू आज पाकिस्तान के सवाल पर खुले दिमाग से सोचते हैं, और उसके औचित्य

को स्वीकार करते हैं, वे भी उसके ख़िलाफ़ हो जावेंगे। और यदि मुसलिम-लीग को यह ख्याल हो कि वह हिन्दुओं के उचित अधिकारों का अनादर कर, उन्हें डराकर, अथवा अंग्रेजों की मदद से पाकिस्तान हासिल कर सकती है तो यह उसका भ्रम है। मुसलिम राज्य में हिन्दू बहुल प्रदेशों का मिलाया जाना, हिन्दुओं द्वारा किसी प्रकार भी बरदाश्त नहीं किया जा सकता। इसलिये यदि मुसलिम-लीग वस्तुतः पाकिस्तान लेना चाहती है, तो उसे यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये।

पाकिस्तान के विपक्ष में एक युक्ति यह भी दी जाती है कि उससे भारत की सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है। सुरक्षा का प्रश्न वस्तुतः अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हिन्दुओं का कहना है कि पाकिस्तान हिन्दुस्तान को प्राकृतिक और वैज्ञानिक सीमा से वञ्चित कर हिन्दुस्तान की सुरक्षा को कमजोर बना देता है परन्तु तनिक भी विचार करने पर हिन्दुओं का यह भय निराधार मालूम होता है। वास्तव में किसी विशेष सीमा को सुरक्षित मानना निरर्थक है, क्योंकि आज की दुनियाँ में भौगोलिक परिस्थितियां युद्ध की निर्णायक नहीं हैं। आधुनिक युद्धकला ने प्राकृतिक सीमाओं के प्राचीन महत्त्व को सर्वथा नष्ट कर दिया है। बड़े बड़े पहाड़, चौड़ी नदियाँ, महासागर व विस्तृत रेगिस्तान किसी प्रदेश की रक्षा करने में अब ज़रा भी सहायक सिद्ध नहीं होते। प्राकृतिक सीमा से रहित राष्ट्रों के लिये अब इस कमी को पूरा करना सर्वथा सम्भव है। ऐसे शक्तिशाली

राष्ट्रों की कमी नहीं है, जिनकी प्राकृतिक सीमायें नहीं हैं; उन्होंने कृत्रिम किलेबन्दी द्वारा उस कमी को पूरा कर लिया है, जो कि प्राकृतिक सीमा की तुलना में बाह्य-आक्रमणों को रोकने में कहीं अधिक समर्थ हैं। कोई कारण नहीं कि हिन्दू भी अन्य देशों की भाँति ऐसा न कर सकेंगे? भारतवर्ष को केवल पश्चिमोत्तर से ही आक्रमण का भय नहीं उस पर समुद्र की ओर से भी आक्रमण हो सकता है, इसलिये समुचित आर्थिक साधनों के होते हुए हिन्दुओं को प्राकृतिक सीमा न होने से डरना न चाहिये, क्योंकि वर्तमान युग में प्राकृतिक सीमा से अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न किसी देश के आर्थिक साधनों का है। आर्थिक साधनों पर विचार करते हुए निम्न तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक है:- †डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के अनुसार वर्तमान ब्रिटिश भारत के ६३% उद्योग धन्धे हिन्दुस्तान में, और ७% पाकिस्तान में रह जायेंगे। हिन्दुस्तान की खनिजात्मक सम्पत्ति ६५% होगी जब कि पाकिस्तान की ५% रह जायेगी। डा० अम्बेडकर ने हिसाब लगाकर बताया है कि जब हिन्दुस्तान की राजकीय आय १२० करोड़ रुपये हैं तब पाकिस्तान की केवल ३६ करोड़ रुपये होती है।

इसमें कोई शक नहीं रह जाता कि हिन्दुस्तान आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न और शक्तिशाली होगा, इसके अतिरिक्त हिन्दुस्तान क्षेत्रफल और आबादी के लिहाज से भी पर्य्याप्त बड़ा

† इण्डिया डिवाइडेड

होगा, जब कि पाकिस्तान बहुत कमज़ोर। असल में सुरक्षा की चिन्ता तो पाकिस्तान को होनी चाहिये हिन्दुस्तान को नहीं।

किसी देश की सुरक्षा आर्थिक साधनों से भी अधिक उसे प्राप्त सशस्त्र सेना की राजभक्ति पर निर्भर करती है। वर्तमान भारतीय सेना की कुछ विशेषतायें हैं। श्री चौधरी ने बड़ी प्रमाणिकता से दर्शाया है कि हिन्दुस्तानी फौज में पंजाब और सीमाप्रान्त के मुसलमानों का अनुपात निरन्तर बढ़ता जा रहा है। फौज में उनकी संख्या लगभग ६०% है। भारतीय सेना में मुसलमानों के प्रभुत्व का एक मात्र कारण अङ्गरेज शासकों की भर्ती-नीति (Recruitment Policy) है। १८५७ के स्वातन्त्र्य सङ्घर्ष ने अङ्गरेजों की आँखें खोल दीं। ग़दर के बाद उन्हें अपनी भर्ती-नीति में आमूलचूल परिवर्तन करना पड़ा। उन लोगों को फौज में भर्ती किया जाने लगा जिन्होंने कि गदर को दबाने में अङ्गरेजों की सहायता की थी। ब्रिटिश-भक्त सम्प्रदायों को लड़ने के योग्य बताया गया और जिन वर्गों की राजभक्ति सन्देहास्पद थी उनके लिये सेना-प्रवेश के द्वार सदा के लिये बन्द कर दिये गये। उन्हें न भर्ती करने की यह दलील दी गई कि वह लड़ने के अयोग्य हैं, असलियत यह है कि वह वही बहादुर और लड़ाका लोग थे जो अपनी स्वतन्त्रता के लिये अङ्गरेजों के विरुद्ध लड़े थे। २०वीं सदी के प्रारम्भ से मुसलमान अङ्गरेजों की ओर झुकने लगे। हिन्दुओं ने कॉंग्रेस द्वारा राजनैतिक आन्दोलन का सूत्रपात किया अतः इस नवीन राष्ट्रीय चेतना को क्षीण

करने के लिये दिन प्रति दिन फौज में मुसलमानों की संख्या बढ़ाई गई।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि भारतवर्ष को अपनी सुरक्षा के लिये पंजाब और सीमाप्रान्त के मुसलमानों पर निर्भर रहना होगा। इसका का अर्थ यह है कि विदेशी आक्रमण से भारत की रक्षा की सम्पूर्ण जिम्मेदारी पंजाब और सीमाप्रान्त के मुसलमानों पर है। उन्हें हमने हमने अपना रक्षक बनाया है। यह बात वहां के मुसलमान भी अच्छी तरह अनुभव करते हैं।

आज हिन्दुओं द्वारा पाकिस्तान का विरोध होने पर मुसलमान हिन्दुओं को अपना शत्रु समझने लगे हैं। तो क्या वह हमले की नाजुक घड़ी में यह मुस्लिम सेना संयुक्त भारत की रक्षा करेगी? क्या असंतुष्ट द्वारपालों से द्वाररक्षा की आशा की जासकती है? क्या हिन्दुओं से विक्षुब्ध, क्रुद्ध और असन्तुष्ट मुसलमान विदेशी आक्रमणकारियों से लड़ने के बजाय विदेशियों के प्रवेश के लिये, उनके स्वागत में भारतवर्ष के दरवाजे न खोल देंगे? क्या यह असम्भव नहीं है कि हिन्दुओं को अपना शत्रु समझने वाले मुसलमान अपनी स्वतन्त्रता के लिये किसी विदेशी राष्ट्र को भारतवर्ष पर आक्रमण के लिये आमन्त्रित करें? हिन्दुओं को इन तकलीफदेह सवालों का जवाब देना होगा। अगर अफगानिस्तान अन्य मुसलमान राज्यों से मिल कर भारतवर्ष पर हमला करें तो उस समय मुस्लिम सेना का क्या आचरण होगा? क्या वह सेना उस सरकार के लिये लड़ेगी जिसे वह हिन्दुओं की

सरकार समझती है ? क्या यह सम्भावना नहीं की जासकती कि उस समय मुसलमान अपने मज़हबी जज्बात में नहीं वह जायेंगे ? अतः क्या ऐसी सेना पर भरोसा किया जासकता है ? कोई भी यथार्थवादी इसका यही उत्तर देगा कि असन्तुष्ट मुसलमानों का आक्रमणकारियों से मिलजाना सर्वथा स्वाभाविक है। १६२६ के खिलाफत आन्दोलन के समय (यद्यपि तब हिंदू मुसलमानों में मेल था) भारतीय मुसलमानों द्वारा अफगानिस्तान के अमीर को भारत पर आक्रमण करने के लिये आमन्त्रित करना इसका प्रबल प्रमाण है। सशस्त्र सेना के अलावा वर्तमान युग में वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा नये २ शस्त्रों और युद्ध साधनों के निर्माण का किसी देश की सुरक्षा में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है परन्तु भयङ्कर शस्त्रों से भी महत्वपूर्ण चीज उन शस्त्रों के रहस्य को गुप्त रखना है। नात्सी जर्मनी की पराजय का एक बड़ा कारण यह भी था कि वह अपने परमाणु परीक्षणों के रहस्यों को गुप्त न रख सका। इसके रहस्य-उद्घाटन का श्रेय जर्मनी के असन्तुष्ट यहूदी वैज्ञानिकों को है।

स्वतन्त्र भारत में भी नवीन शस्त्रों के आविष्कार होंगे। तब क्या यह असम्भव है कि उसके असन्तुष्ट मुसलमान वैज्ञानिक देश के साथ विश्वासघात न करें ? यदि राजनैतिक दृष्टि से भारत एक रहता है और मुसलमानों को उनकी इच्छा के विरुद्ध उसमें रहना पड़ता है तथा पाकिस्तान द्वारा जागृत पृथक् राष्ट्र की भावना उनमें कायम रहती है तो सुरक्षा की दृष्टि से

भारत अत्यन्त कमजोर होगा, जब हम पूरी रियायतें देकर मुसलमानों को सन्तुष्ट नहीं कर पाते और मुसलमानों को अपने साथ रहने के लिये विवश करते हैं तो मुसलमान हमारे देश में एक असन्तुष्ट प्रबल अल्पसंख्या के रूप में रह जाते हैं। यह असन्तुष्ट और शक्तिशाली अल्पसंख्या राष्ट्रों की रक्षा के लिये कितनी घातक होती है यह बात गत महायुद्ध से पहले के योरुपीय देशों विशेषतः तुर्की के उदाहरणों से स्पष्ट हो जाती है। जर्मनी, पौलेण्ड और जैकोस्लोवाकिया आदि देशों को उनकी असन्तुष्ट प्रबल जर्मन अल्पसंख्या के कारण ही उन्हें पादाक्रान्त करने में सफल हो सका। भारतवर्ष में भी असन्तुष्ट मुसलमान अल्पसंख्या किसी समय विभीषण दल का कार्य करके देश की सुरक्षा को खतरे में डाल सकती है।

अब यह हिन्दुओं को सोचना है कि उनके लिये क्या हितकर है, अखण्ड और असुरक्षित भारत अथवा खण्डित परन्तु सुरक्षित और स्वतन्त्र भारत ? वास्तव में हिन्दुओं का कल्याण इसी में है कि वह भारत के विभाजन की माँग स्वीकार करलें ताकि वह हिन्दुस्तान की सुरक्षा कर सकें; उनकी स्वतन्त्रता को कायम रख सकें। हिन्दुओं के लिये मुसलमानों अलग कर देना अच्छा है बनिस्बत उन्हें जबर्दस्ती साथ रख अपने विरुद्ध रखना। यदि मुसलमान पाकिस्तान की माँग न मानने के कारण (जिसमें कि मुसलमानों का ही नुक़सान है) हिन्दुओं को अपना शत्रु समझते हैं तो हिन्दुओं की क्या यह बुद्धिमानी है कि वह एकता के जनून में इसे ठुकरादें ?

पाकिस्तान का विरोध विभिन्न वर्ग विभिन्न दृष्टिकोणों से करते हैं। हिन्दू महासभा भारत की एकता की दुहाई देती हुई पाकिस्तान के विरोध में अखंड-हिन्दुस्तान का नारा बुलन्द करती है। उनकी अखण्डता का यह दावा ऐतिहासिक दृष्टि से बिलकुल गलत है। तथाकथित अखण्ड-हिन्दुस्तान की राजनैतिक सीमायें सदैव परिवर्तित होती रही हैं। किसी समय उसमें अफगानिस्तान सम्मिलित था किन्तु आज वह हिन्दुस्तान का हिस्सा नहीं है। सांस्कृतिक दृष्टि से मध्य एशिया बर्मा, स्याम, मलाया, हिन्दचीन, अनाम और सिंहल अखण्ड-भारत के ही अङ्ग हैं। यदि भारतवर्ष की अखण्डता इन देशों के पृथक रहने से खण्डित नहीं होती तो वह सिन्ध, पंजाब, सीमाप्रान्त और बङ्गाल के अलग होने से भी खण्डित नहीं होगी। हिन्दू-संस्कृति अजर, अमर और सार्वभौम है। उसे प्रादेशिक सीमाओं में बाँधना उसके साथ घोर अन्याय करना है। यदि हम कट्टर हिन्दू-दृष्टिकोण से सोचें तो हमें ज्ञात होगा कि हिन्दू-हितों की रक्षा पाकिस्तान द्वारा ही हो सकती है। अखण्ड-भारत में पंजाब और सीमाप्रान्त के मुसलमानों को सेना में ६०% स्थान मिले हैं। विभाजन के बाद उनका हिन्दुस्तान की सेना से सम्बन्ध-विच्छेद हो जावेगा तब उनके सब रिक्त स्थान हिन्दुओं को ही प्राप्त होंगे। इस भाँति तब हिन्दू नेतृत्व में हिन्दू-सेना का निर्माण हो सकेगा।

अखण्ड भारत में सरकारी नौकरियों में मुसलमानों के

लिये हिन्दुओं की तुलना में साधारणतया अयोग्य होते हुए भी २५॥ स्थान मुसलमानों के लिये सुरक्षित हैं। विभाजन के बाद सरकारी नौकरियों में उनका अनुपात बहुत नगण्य रह जायेगा।

अखण्ड-भारत में मुसलमानों को केन्द्रीय धारा-सभा में लगभग हिन्दुओं के समान स्थान प्राप्त हैं। विभाजन के बाद मुसलमानों के विशेषाधिकार तो समाप्त हो ही जायेंगे बल्कि उस समय हिन्दुस्तान संयुक्त निर्वाचन प्रणाली का सूत्रपात करने में स्वतन्त्र होगा। फिर भी यदि यह मान लिया जाय कि मुसलमानों को अपनी जन-संख्या के आधार पर धारा-सभाओं में प्रतिनिधित्व दिया जायगा तब भी यदि आज उन्हें ३३॥% स्थान मिले हैं तो पाकिस्तान के बाद उनका अनुपात १२॥% ही रह जावेगा।

राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भी पाकिस्तान स्वीकार करना लाभकर है। वर्तमान समय में पाकिस्तान की माँग स्वीकार न करने से हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की जो खाई दिनों-दिन बढ़ती चली जा रही है, वह पट जायगी। इस समय देश का वातावरण साम्प्रदायिक दङ्गों की तनातनी से विक्षुब्ध हो उठा है; वह सर्वथा शान्त हो जायगा। तब हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखना छोड़ देंगे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह शान्त वातावरण देश की उन्नति और प्रगति में कितना अधिक सहायक सिद्ध होगा। इस समय हमारी सारी शक्तियाँ साम्प्रदायिक-दङ्गों को शान्त करने में लगी हुई हैं। हमारे देश की सब से महान विभूति बङ्गाल के भय-त्रस्त एवं साम्प्रदायिक

भावना से विक्षुब्ध और पीड़ित प्रदेशों में इस वृद्धावस्था में अपने बहुमूल्य समय का अपव्यय कर रही है। साम्प्रदायिक समस्या के शान्त होने पर यह विभूति तथा देश के अन्य कर्णधार भारतवर्ष को सांस्कृतिक, सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से समुन्नत कर सकेंगे।

किसी भी स्थायी सरकार के लिये यह जरूरी है कि उसके नागरिकों में परस्पर सहयोग सद्भाव और एकता हो। भारतवर्ष में हिन्दू और मुसलमानों में एकता स्थापित करने के सब प्रयत्न असफल हुये हैं। हिन्दू और मुस्लिम एकता का विचार मृगमरीचिका के समान है और अब उसे छोड़ देना ही बेहतर है क्योंकि इस दिशा में सदा हिन्दुओं के सब प्रयत्न निरर्थक और दुखान्त ही साबित हुए हैं।

यदि किसी भारतवासी से पूछा जाय कि तुम्हारे हृदय में अपने देश के लिये अधिक से अधिक क्या आकांक्षा है? इस में कोई सन्देह नहीं कि एक सच्चा भारतीय जिसे अपने देश पर गर्व है उस प्रश्न का यही उत्तर देगा'अखंड और स्वतन्त्र भारत मेरा आदर्श है, लेकिन जबतक यह आदर्श हिन्दू और मुसलमान दोनों के द्वारा मंजूर नहीं किया जाता तब तक यह आदर्श केवल हमारी शुभकामना को ही प्रकट कर सकता है। यह कभी यथार्थ रूप धारण नहीं कर सकता।

फिर भी यदि हमने अखंडता के आदर्श में दो परस्पर विरोधी जातियों को एक विधान में जकड़ भी दिया तो

वह विधान कितने दिन चल सकेगा ? आज प्रत्येक मुसलमान पाकिस्तान में ही अपनी मुक्ति समझता है। मुसलमान को पाकिस्तान न देने का मतलब होगा, तीसरी पार्टी को कायम रखना और परतन्त्र रहना। 'यदि हिन्दुओं ने पाकिस्तान के विरोध का निश्चय ही कर लिया है तो मुसलमानों ने भी इस बातका निश्चय कर लिया है कि किसी एक केन्द्रीय सरकार को न चलने देंगे चाहे इसके कारण भारतवर्ष को सदा के लिये गुलाम रहना पड़े, यह है मुस्लिम मनोवृत्ति, इसका मतलब यह हुआ कि हिन्दू और मुसलमानों के स्वतन्त्रता के स्वप्न पूरे न होंगे। उन्हें पूरे करने का एक ही उपाय है कि मुसलमानों को अपने भाग्य निर्णय में स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय। इसका परिणाम होगा भारतवर्ष का विभाजन। यही एक हल है जिससे मुसलमानों के दिलों से हिन्दुओं और हिन्दुओं के दिलोंसे मुसलमानों का भय दूर होसकेगा और इस भांति दोनों जातियां शांतिपूर्वक अपना विकासकर सकेंगी।

हमारे सामने अब तीन विकल्प हैं—१ अखण्ड और परतन्त्र भारत, २ स्वतन्त्र पर खण्डित भारत, ३ अन्तिम विकल्प है जिससे आप मुसलमानों को सन्तुष्ट कर सकते हैं—मुसलमानों को धारा-सभा, कार्यकारिणी और नौकरियों में ५०% हिस्सा देना किन्तु इस मूल्य पर भारत को अखण्ड रखना हिन्दुओं के लिये अत्यन्त अहितकर, शर्मनाक और कायरतापूर्ण होगा। इससे यह लाख दर्जे अच्छा है कि हिन्दू इस अखण्डता के सिराक में अपनी आत्महत्या के प्रयत्नों को छोड़ दें और भारतवर्ष को दो

स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त हो जाने दें। यही एक उपाय है जिससे हिन्दू अपनी संस्कृति और साहित्य, धर्म और दर्शन, विज्ञान और कला का विकास कर सकेंगे; और इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय जगत में हिन्दुस्तान प्रमुख स्थान ग्रहण कर सकेगा। हिन्दुस्तान की अखण्डता से प्यारी हमें उसकी स्वतन्त्रता होनी चाहिये।

स्वतन्त्रता

स्वतन्त्रता राष्ट्र का प्राण है। यही उसकी गरीबी, अशिक्षा, रोग, दासता और सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का एकमात्र उपाय है। आज हम पराधीन हैं; यही हमारे पतन का कारण है। स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है यदि ब्रिटिश सरकार हमारी स्वतंत्रता के मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट डालती है; स्वतंत्र भारत के शासन विधान को मानने से इनकार करती है उस समय भारतीय जनता का क्या कर्तव्य शेष रह जाता है? इसका उत्तर भारत के तरुण नेता श्री जयप्रकाश नारायण के शब्दों में यों दिया जा सकता है "यदि ब्रिटिश सरकार ने विधान परिषद के निश्चयों को स्वीकार न किया तो फिर भारत के पास स्वतंत्रता के लिये लड़ने के सिवाय अन्य कोई चारा नहीं। यदि यह स्वतंत्रता संग्राम छिड़ना आवश्यक हुआ तो इसमें इस देश का हर एक देशवासी अपने प्राणों की बाज़ी लगा देगा और यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि विजय हमारी ही होगी; उसी दिन ४० कोटि भारतीयों की चिरकाल पोषित आकांक्षायें पूर्ण